राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा

एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

एम.एस. यादव

वरद एम. निकल्जे

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद

National Council of Educational Research and Training

प्रथम संस्करण *नवम्बर 2009 कार्तिका 1931* **PT 3T VSN** ***© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद, 2009*** **रुपए 40.00**	**सर्वाधिकार सुरक्षित** इस प्रकाशन का कोई भी भाग प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या अन्य तरीके से पुन: प्रस्तुत, किसी पुनर्प्राप्ति प्रणाली में संग्रहित या प्रसारित नहीं किया जा सकता है।
	एनसीईआरटी, प्रकाशन विभाग के कार्यालय एनसीईआरटी परिसर श्री अरबिन्द मार्ग, **नई दिल्ली 110016** **दूरभाष : 011- 26562706** 108, 100 फीट रोड होसदाकेरे हाल्ली एक्सटेंशन बनशंकरी III स्टेज **बैंगलुरु 560 085** **दूरभाष : 060-26725740** नवजीवन ट्रस्ट बिल्डिंग पो.ऑ. नवजीवन **अहमदाबाद 380 014** **दूरभाष : 079-27541446**

	सीडब्ल्यूसी परिसर धनकल बस स्टॉप के सामने पाणिहटी **कोलकाता 700114** **दूरभाष : 033-25530454** सीडब्ल्यूसी परिसर मालगांव **गुवाहाटी 781 021** **दूरभाष : 0361-2674869**
80 जीएसएम कागज़ पर मुद्रित सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रकाशन विभाग, श्री अरबिन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 से प्रकाशित एवं यंग प्रिंटिंग प्रेस, ई-71, सेक्टर-6, नोएडा 201301 द्वारा मुद्रित	**प्रकाशन दल** अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येति राजकुमार* प्रमुख निर्माण अधिकारी : *शिव कुमार* मुख्य सम्पादक : *श्वेता उप्पल* मुख्य व्यवसाय प्रबन्धक : *गौतम गांगुली* सम्पादक : *विजयम शंकरनारायण* निर्माण सहायक : *सुबोध श्रीवास्तव* **आवरण** श्वेता राव

प्रस्तावना

पाठ्यचर्या रूपरेखा और सम्बन्धित प्रस्तुतियों की वर्तमान समीक्षा का प्रारम्भिक कार्य जुलाई 2005 में शुरू हुआ था और उसी वर्ष दिसम्बर में पूरा हो गया था। यह समीक्षा छह खण्डों में है: सन्दर्भ को लेकर एक परिचयात्मक खण्ड है, फिर दो समीक्षा समितियों की टिप्पणियों सहित चारों पाठ्यचर्या रूपरेखाओं पर एक-एक खण्ड है और समापन टिप्पणियों को लिए हुए एक अन्तिम खण्ड है। शामिल किए गए विषयों का परिप्रेक्ष्य मुहैया कराने के लिए प्रत्येक खण्ड में एक संक्षिप्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। इन पाठ्यक्रम रूपरेखाओं, साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में अन्य नए मोड़ों को, उनके समय के व्यापक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है।
'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास' शीर्षक से प्रकाशित शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट में अनेक विशेषताएँ थी। इसकी मुख्य विशेषता शैक्षिक पुनर्निर्माण के प्रति इसका व्यापक दृष्टिकोण था; एक और विशेषता थी भारत के लिए शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली का एक खाका प्रस्तावित करने की कोशिश करना। शिक्षा आयोग की इन विशेषताओं ने ही 1968 और 1986 (1992 में संशोधित) में शिक्षा की राष्ट्रीय नीतियाँ तैयार करने के लिए बड़ी गति प्रदान की। कार्रवाई से जुड़े इन निर्णयों के परिणामस्वरूप परिकल्पित शैक्षिक संरचनाओं को साकार करने के प्रयासों के सिलसिले में शिक्षा सम्बन्धी कुछ अवधारणाओं को बहुत महत्त्व मिला।

ऐसी ही एक अवधारणा 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा' की थी, जो 1970 के दशक में प्रमुखता से उभरी। तब से यह शैक्षिक पुनर्निर्माण और उस पर बहस से सम्बन्धित प्रमुख अवधारणा बन गई, और उसके बाद भारत में एक तुलनीय शिक्षा प्रणाली विकसित करने के दृष्टिकोण से समय-समय पर पाठ्यक्रम रूपरेखाएँ जारी की गई हैं।

हमने महसूस किया कि शिक्षा के पुनर्निर्माण के विभिन्न पहलुओं पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) द्वारा 1975, 1988, 2000 और 2005 में पाठ्यक्रम रूपरेखाओं कि की गई कवायदें लाभप्रद कवायदें हैं। उनसे प्राप्त प्रामाणिक डैटा और विभिन्न मुद्दों पर अच्छी तरह से प्रलेखित विवेचनाओं को देश के विद्वान शिक्षाविदों द्वारा तैयार और परीक्षित किया गया। पाठ्यक्रम रूपरेखाओं के एक परीक्षण (उनके मसौदे तैयार करने और अन्तिम रूपों दोनों स्तरों पर)

से पता चला कि उनके विकास के विभिन्न चरणों में अकादमिक मत-भिन्नता रही थी। यह कार्रवाई सम्बन्धी निर्णयों और सरोकारों को लेकर विभिन्न विचारों के साथ-साथ अकादमिक मतभेदों के बिन्दुओं पर उपयोगी जानकारी प्रदान करता है, जिससे शैक्षिक कर्मियों के बीच विचार-विमर्श के लिए एक अवसर बनता है।

- दस वर्षीय विद्यालय के लिए अनुशंसित साझा पाठ्यचर्या, 1975 समस्याएँ निर्मित करती प्रतीत हो रही थी, जिनमें से पाठ्यक्रम भार प्रमुखता से उभर कर सामने आई थी। 1977 में, ईश्वरभाई पटेल समिति ने इस समस्या का परीक्षण किया।
- 1976 की रूपरेखा में अनुशंसित पाठ्यचर्या योजना का अन्तिम निर्णय के पहले आकलन करने पर अनेक संगठनात्मक समस्याएँ सामने आईं। इन मुद्दों के परीक्षण के लिए 1978 में एम. आदिसेषैया की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति नियुक्त की गई।
- विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2000 अपनी अन्तर्वस्तु और सूत्रीकरण दोनों मामलों में इतनी विवादास्पद हो गई कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत भारत के सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की गई।

अकादमिक रूप से हमने न केवल पाठ्यचर्या रूपरेखा को बल्कि दो समितियों द्वारा किए गए कार्य की समीक्षा को भी उपयोगी माना। हमारा यह भी मानना है कि राष्ट्रीय स्तर की नीतियों की ऐसी समीक्षाएँ शैक्षिक पुनर्निर्माण सम्बन्धी निर्णयों का संप्रेषण करने में और समुचित विमर्श निर्मित करने की दृष्टि से प्रासंगिक है। शिक्षा में रुचि रखने वाले लोगों द्वारा प्रामाणिक विश्लेषण के सन्दर्भ में विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का स्वागत है, भले ही यह उन विचारों को पैना करने का कार्य करे जो लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के साथ पूरा सामंजस्य नहीं रखता।

विश्लेषण और व्याख्या के सन्दर्भ में हमने जो कुछ प्रस्तुत किया है, समापन कथन में उसको संक्षेप में रखा गया है।

1975 से 2005 तक की समस्त पाठ्यक्रम रूपरेखाओं की समीक्षा करने का अवसर प्रदान करने के लिए प्रोफेसर कृष्ण कुमार, निदेशक, एनसीईआरटी को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

एम.एस. यादव
पूर्व संकायाध्यक्ष
एम.एस. विश्वविद्यालय,
वडोदरा

वरद एम. निकल्जे
प्राध्यापक (अंग्रेजी)
भाषा विभाग, एनसीईआरटी

नई दिल्ली
15 जुलाई 2009

विषयवस्तु



वाह, मेरा बच्चा स्कूल जा रहा है!!...
किस्मत से मैं एअरपोर्ट से इस एक को लाने में सफल रहा!
(*सौजन्य : द टाइम्स ऑफ इण्डिया* में आर.के. लक्ष्मण)

1. परिचय

पृष्ठभूमि

किसी भी देश में शिक्षा प्रणाली का बुनियादी उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण होता है जो राष्ट्र के बुनियादी मूल्यों और सांस्कृतिक परम्पराओं तथा साथ ही नागरिकों की आशाओं और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करता हो। शिक्षा प्रणाली और मौलिक अर्थों में इसकी प्रक्रियाओं से एक ऐसे भावी समाज की परिकल्पना पर ध्यान केन्द्रित करने की अपेक्षा की जाती है जिसे नागरिक एक राष्ट्र के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यालयों में आज शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चे आने वाले समय में ऐसे समाज के निर्माण की दिशा में योगदान देंगे। इसलिए, शिक्षा लोगों की व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार की आकांक्षाओं को पूरा करने के एक साधन के रूप में कार्य करती है, और इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन लाती है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, भारत के लोगों में ब्रिटिश शासकों द्वारा निर्मित शिक्षा प्रणाली के प्रति अत्यधिक असन्तोष पनप चुका था। इस असन्तोष की अभिव्यक्ति इण्डियन नेशनल कांग्रेस द्वारा उपलब्ध कराए गए मंच के माध्यम से हुई थी, जो उस वक्त स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रही थी। 1906 में, इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने निम्नानुसार एक प्रस्ताव पारित किया :

> वक्त आ गया है कि अब देशभर में लोग लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए गम्भीरतापूर्वक राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न उठाएँ और एक शिक्षा प्रणाली स्थापित करें - साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक - जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हो, राष्ट्रीय तर्ज पर हो और राष्ट्रीय नियंत्रण में हो, और देश के भाग्य के निर्माण का उद्देश्य पूर्ण कर सके।[1]

जब 1938 में कांग्रेस को प्रान्तीय स्तर पर शिक्षा पर प्रभाव डालने और उसे नियंत्रित करने का अवसर मिला, उसने यह अनिवार्य समझा कि “एक नई बुनियाद पर और एक राष्ट्रव्यापी पैमाने पर राष्ट्रीय शिक्षा स्थापित की जाए”[2]।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के निर्माण की यह माँग स्वतंत्रता संग्राम की रीति-नीति का एक अभिन्न अंग बन गई, और 1947 तक बनी रही। कार्रवाइयों के लिहाज से इसने राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा को अभिव्यक्ति देने और ठोस रूप देने की दिशा में योगदान दिया, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणों में देखा गया है।

- दादा भाई नौरोजी ने सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा के लिए इण्डियन एजुकेशन कमिशन के सामने एक मजबूत दलील पेश की (1882)।

- महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, वकील और लेखक बाल गंगाधर तिलक पहले ही शिवाजी उत्सव को एक सच्चे राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रतीक के रूप में लोकप्रिय बना चुके थे। दिसंबर 1895 में, विशेष रूप से पुणे कांग्रेस मीटिंग में शामिल हुए नेताओं की उपस्थिति का लाभ उठाने के लिए शिवाजी आन्दोलन के सिलसिले में पूना (वर्तमान में पुणे) में एक भव्य कार्यक्रम आयोजित हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष सुरेंद्रनाथ बनर्जी, मदन मोहन मालवीय एवं अन्य व्यक्तियों ने 15000 लोगों के एक बड़े जनसमूह को संबोधित किया, जिसमें उन्होंने लोगों से शिवाजी के कार्यों से प्रेरणा लेते हुए राजनीतिक मुक्ति के लिए संघर्ष करने का आवाहन किया।[3]
- तिलक ने गणपति उत्सव को पुनर्जीवित किया, एक तो, हिन्दू समुदाय के बिखरे हुए वर्गों को इकट्ठा करने के एक साधन के रूप में, और दूसरे, उनमें राष्ट्रवाद की भावना जगाने के लिए। जनता को ब्रिटिश शासन के खिलाफ आन्दोलित करना हमेशा उनका मुख्य उद्देश्य होता था। गणपति प्रतिमा स्थलों पर और उनके आसपास जनसभाएँ आयोजित की जाती थी, जिनमें तिलक और उनके अनुयायी भाषण देते थे। (यह 10 दिवसीय उत्सव हुआ करता था।)[4]

इस प्रकार तिलक ने सामाजिक जागृति की एक नई लहर शुरू की और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ जैसे शिक्षण संस्थानों की स्थापना और लोगों की शिक्षा के लिए अन्य कार्यों की शुरुआत के लिए लोकप्रिय जन-समर्थन जुटाने के जरिए राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए इसका इस्तेमाल किया।

- जी.के. गोखले ने केन्द्रीय विधायिका में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए एक प्रस्ताव और एक विधेयक प्रस्तुत किया (1910-12)। हालाँकि, ये पारित नहीं हुए।
- महात्मा गाँधी चाहते थे कि प्रत्येक बच्चे को 7 साल की अनिवार्य शिक्षा मिलनी चाहिए, जिसकी विषयवस्तु मैट्रिकुलेशन में से अंग्रेजी घटा देने और एक हस्त कौशल जोड़ देने के बराबर हो (1937)।
- भारत की जनता ने 'भारत में युद्धोत्तर शैक्षणिक विकास, 1944-84' (पोस्ट वॉर एजुकेशनल डेवलपमेण्ट इन इण्डिया, 1944-84) शीर्षक से प्रस्तुत डाल्टन प्लान को उसके संकीर्ण उद्देश्यों, दी गई लम्बी समयावधि और समस्त उत्तर-प्रारम्भिक शिक्षा के लिए काफी एकान्तिक दृष्टिकोण के कारण स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया।

- स्वतंत्रता के पहले एक अन्य महत्त्वपूर्ण कोशिश राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की स्थापना थी। ऐसे संस्थानों ने कामगारों को अनुभव और प्रशिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से मार्गदर्शी परियोजनाओं के रूप में कार्य किया। इसने 1921 में गति पकड़ी जब असहयोग आन्दोलन में शामिल होने के लिए हजारों छात्रों ने विद्यालय और महाविद्यालय छोड़ दिए, और उन्हें वैकल्पिक स्वरूपों में शिक्षा प्रदान करना आवश्यक था। गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ और जामिया मिलिया इस्लामिया जैसे संस्थान स्थापित किए गए। इन संस्थानों ने सरकारी वित्तीय सहायता लेने से इनकार कर दिया। उन्होंने आंशिक रूप से सार्वजनिक सहयोग से लेकिन मुख्य रूप से अपने समर्पित कार्यकर्ताओं के त्याग के माध्यम से अपने को संचालित करने को तरजीह दी।

शिक्षा के क्षेत्र में इन प्रयोगों ने राष्ट्रीय शिक्षा की जरूरत, प्रतिबद्ध शैक्षणिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ताओं की तैयारी, औपनिवेशिक शासन और शिक्षा की तुलना में शिक्षा और उसके संचालन को अधिक व्यावहारिक ढंग से देखने की जरूरत के बारे में जागरूकता निर्मित करने में सहायता की, विशेषकर इसे लेकर जागरूकता बनाने में कि संस्थानों द्वारा सरकारी संरक्षण प्राप्त करने से इन्कार करने से संसाधनों की कमी हुई है और परिणामस्वरूप शिक्षा का स्तर प्रभावित हुआ है। उपरोक्त कारकों से जुड़े कारणों के चलते इन नवाचारी संस्थानों, जिन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा को लेकर अवधारणा और प्रक्रिया दोनों ही रूपों में प्रयोग किए, को कोई बड़ी भारी सफलता प्राप्त नहीं हुई। परिणामस्वरूप, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, राष्ट्रीय शिक्षा का ऐसा कोई पहचान योग्य और स्वीकार्य एकल मॉडल मौजूद नहीं था जिसे देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के रूप में लागू किया जा सके। निश्चित ही, इस विचार के प्रति अत्यधिक उत्साह मौजूद था। इसके अतिरिक्त, ऐसी एक शिक्षा प्रणाली से प्राप्त होने वाले लाभों को लेकर खासा सामाजिक दबाव और अपेक्षा मौजूद थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद, सरकार ने देश में शैक्षणिक प्रणाली की स्थिति में सुधार के उद्देश्य से कार्यक्रम शुरू किए। केन्द्र सरकार द्वारा दो आयोगों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग या यूजीसी (1948-49) और माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53), का गठन इस दिशा में उठाए गए महत्त्वपूर्ण कदमों में था। हालाँकि, शैक्षणिक प्रणाली के पुनर्निर्माण के प्रति स्वतंत्रता के बाद का रवैया अब भी खण्डित ही था। परिणामस्वरूप, यह कह कर शैक्षणिक प्रणाली की आलोचना की जाती रही कि यह लोगों की जरूरतों और अपेक्षाओं के प्रति संवेदनशील नहीं है, ऐसा इसलिए भी कहा जाता था क्योंकि अब शिक्षा राष्ट्रीय नियंत्रण में थी। 1950 के दशक के अन्त में और 1960 के दशक की

शुरुआत में असन्तोष बढ़ गया। इससे एक व्यापक माँग उठी कि प्रौढ़ शिक्षा समेत शिक्षा पर समग्र रूप से दृष्टिपात करने के लिए भारत सरकार द्वारा एक शिक्षा आयोग गठित किया जाए।

शिक्षा आयोग (1964-1966)

इस पृष्ठभूमि में केन्द्र सरकार ने शिक्षा आयोग (1964-1966) गठित किया और चिकित्सा एवं कानूनी शिक्षा के अलावा शिक्षा के समूचे वितान पर दृष्टि डालने का कार्य सौंपा गया। शिक्षा आयोग को सौंपा गया कार्य निम्नानुसार था।

> आयोग सरकार को शिक्षा के राष्ट्रीय ढाँचे और सभी स्तरों पर और सभी पहलुओं में शिक्षा के विकास के लिए सामान्य सिद्धान्तों और नीतियों के बारे में सलाह देगा। हालाँकि, उसे चिकित्सा या विधिक शिक्षा की समस्याओं का परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इन समस्याओं के ऐसे पहलुओं को वह देख सकता है जो उसकी व्यापक पड़ताल के लिए आवश्यक हों।[5]

शिक्षा आयोग की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ और सिफारिशें, जिनका इस शोधपत्र से सीधा सम्बन्ध है, नीचे उल्लिखित हैं।

1. शिक्षा आयोग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा का एक राष्ट्रीय स्वरूप या पूरे देश के लिए सभी स्तरों के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करना था। परिणामस्वरूप, जैसा कि सभी जानते हैं, शिक्षा आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक ढाँचे की सिफारिश की, जिसे 10+2+3 के नाम से जाना जाता है। बाद में इसे भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) 1968 के माध्यम से अंगीकार करने के लिए स्वीकार किया गया।
2. एक राष्ट्रीय नीति विकसित करने में मुख्य ज़ोर शिक्षा को राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़ने पर था। शिक्षा आयोग ने शिक्षा की प्रक्रियाओं और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शैक्षणिक ढाँचों के निर्माण की ज़रूरत से जुड़ी सभी क्रियान्वयन सम्बन्धी बारीकियों पर जोर देने की कोशिश की। यह लक्ष्य शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट के शीर्षक 'शिक्षा और राष्ट्रीय विकास' में प्रतिबिंबित होता है।
3. रिपोर्ट में पेडॅगोजि (अध्ययन व अध्यापन का शास्त्र) सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें राष्ट्रीय विकास की आवश्यकताओं के अनुसार ही सभी चरणों की विद्यालयीन शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या के चयन को आकार देने पर जोर दिया गया है। इस उद्देश्य के लिए अपनाया गया दृष्टिकोण ऊपर वर्णित इन दो मौलिक मानकों के अनुरूप है - एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को अंगीकार करना, और शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक

साधन समझना, ताकि शिक्षा और राष्ट्रीय विकास को परस्पर सहयोगी एवं अन्तर्निभर सम्बन्धों के रूप में एक साथ लाया जा सके।

4. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का खाका पहली बार 1966 में शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के रूप में उपलब्ध हुआ था। उन लोगों ने रिपोर्ट का स्वागत किया, जो शैक्षणिक पुनर्निर्माण में रुचि रखते थे और जो इस दस्तावेज को पढ़ने और इसके कार्यान्वयन से प्राप्त होने वाले शैक्षणिक परिणामों के साक्षी बनने के लिए उत्सुक थे। यह रिपोर्ट जून 1966 में प्रेस को जारी की गई, और उसकी मुख्य अनुशंसाएँ व्यापक रूप से प्रचारित की गई, जिससे इस विषय पर गहन राष्ट्रव्यापी बहस आरम्भ हुई। सितंबर 1966 में रिपोर्ट की प्रतियाँ सभी राज्य सरकारों और विश्वविद्यालय को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजी गई।

यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि आयोग की निर्धारित विचार-सूची के अनुसार इसे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक खाका सुझाना था, लेकिन राज्य सरकारों और विश्वविद्यालयों से परामर्श करने के बाद केन्द्र सरकार ही इसे लेकर निर्णय कर सकती थी। इस विषय में, शिक्षा आयोग की निम्नलिखित अनुशंसा को केन्द्र सरकार ने 'प्रमुख अनुशंसा' माना।

> भारत सरकार को राष्ट्रीय नीति पर एक वक्तव्य जारी करना चाहिए, जो राज्य सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों को अपने-अपने क्षेत्रों में शैक्षणिक योजनाएँ बनाने और कार्यान्वित करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करें।[6]

आगे यह निर्णय लिया गया कि इस विषय में राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और अन्य सभी सम्बन्धितों के विचार आमंत्रित किए जाएँ। केन्द्र सरकार द्वारा कोई वक्तव्य जारी करने से पहले इन विचारों पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (CABE), कुलपतियों के सम्मेलन और संसद के दोनों सदनों में गहन चर्चा होनी चाहिए।

तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. त्रिगुण सेन, जो शिक्षा आयोग के एक सदस्य रहे थे, ने 1967 में संसद सदस्यों की एक समिति गठित की, जिसमें सभी राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व था। इस समिति द्वारा राष्ट्रीय नीति का एक कार्यकारी मसौदा उपलब्ध कराया जाना था।

समिति को सभी सम्बद्ध दस्तावेज - शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, और उस पर राज्य सरकारों और अन्य से प्राप्त सभी टिप्पणियाँ उपलब्ध कराई गईं थीं।

समिति ने तत्काल महत्त्व की कार्रवाइयों के लिए अनेक सिफारिशें कीं। इनमें से कुछ इस शोध पत्र के विषय के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

1. एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को तत्काल निर्मित किए जाने की आवश्यकता पर समिति ने शिक्षा आयोग के साथ सहमति प्रकट की।
2. कक्षा 1 से 10 के लिए सामान्य शिक्षा की साझी पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में एक कार्यक्रम निर्धारित किया गया। यह बताता है :

   सामान्य शिक्षा की साझी पाठ्यचर्या के साथ, 10 वर्षीय विद्यालय, देश के सभी भागों में अपनाया जाना चाहिए। उन सभी क्षेत्रों में शिक्षा का नया ढाँचा यथासम्भव शीघ्र अपनाया जाना चाहिए जहाँ विद्यालय और महाविद्यालय की शिक्षा में, कला, वाणिज्य और विज्ञान में प्रथम डिग्री प्राप्त करने में 15 वर्ष या अधिक का समय लग जाता है। जहाँ विद्यालयीन शिक्षा में एक वर्ष जोड़ा जाना शामिल है, प्रस्ताव के कार्यान्वयन के लिए चरणबद्ध कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए।

3. कार्य अनुभव और राष्ट्रीय एवं सामाजिक सेवा को समस्त शिक्षा में एक अभिन्न अंग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।
4. विज्ञान शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए और वैज्ञानिक अनुसन्धान को लगभग दस वर्षों तक विस्तारित एक चरणबद्ध कार्यक्रम के रूप में बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विज्ञान और गणित को दसवीं कक्षा के अन्त तक सामान्य शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।
5. अनिवार्य छात्र सेवाओं के विकास पर बल दिया जाना चाहिए, जैसे- खेल-कूद के कार्यक्रमों का विकास, माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक युक्त पुस्तकालयों का विकास आदि।
6. लड़कियों और समुदाय के कमजोर वर्गों में शिक्षा के प्रसार के उद्देश्य से कार्यक्रमों का विस्तार किया जाना चाहिए।
7. ऐसे कार्यक्रमों का बड़े पैमाने पर और प्राथमिकता के आधार पर विकास किया जाना चाहिए जिनमें वित्तीय संसाधनों के बजाय नियोजन, संगठन, और मानवीय प्रयासों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे- राष्ट्रीय चेतना, चरित्र निर्माण, मौजूदा सुविधाओं का गहन उपयोग, पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन, पाठ्यचर्या में सुधार, शिक्षण की ऊर्जावान पद्धति को अपनाना, परीक्षा सुधार, और पाठ्यपुस्तकों में सुधार को प्रोत्साहित करना।[7]

शिक्षा मंत्री ने शिक्षा आयोग की रिपोर्ट और संसद सदस्यों की समिति की रिपोर्ट, दोनों पर चर्चा के लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (CABE) की एक बैठक आयोजित की। अन्त में, शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पर संसद के दोनों सदनों में चर्चा की गई।

बाद में, शिक्षा मंत्रालय में एक मसौदा समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर एक वक्तव्य का मसौदा तैयार किया। इसे मंत्रीमण्डल ने मंजूरी दी और यह 1968 में जारी किया गया।

शिक्षा आयोग और तत्पश्चात राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इसकी अनुशंसाओं को शामिल करने के पहले उन पर हुई बहस का यह संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित कारणों से यहाँ शामिल किया गया है।

1. विद्यालय स्तर की शिक्षा मुख्य रूप से राज्यों की जिम्मेदारी रही है। 1976 के 42वें संवैधानिक संशोधन के बाद भी, जिसने शिक्षा को विषयों की समवर्ती सूची में रखा, यह मुख्य रूप से राज्यों की जिम्मेदारी बनी रही, हालाँकि तब से केन्द्र की भूमिका को अधिक स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है। हमारे जैसी एक संघीय शासन प्रणाली में, "सार्थक सहभागिता", जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 में वर्णन किया गया है, को पूरी तरह विकसित और परिचालित करना अभी शेष है।
2. प्रयोजनपूर्वक और विचारपूर्वक शिक्षा देने का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाने को आसान बनाना है। इसलिए, यह समाजीकरण की किसी प्रक्रिया से कहीं अधिक है - आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाएँ इस उद्यम में सहायता करती हैं। शिक्षा की यह विशेषता - मानव विकास के एक मूल तत्व के रूप में - अन्य प्रक्रियाओं जैसे कि राजनीतिक शासन की तुलना में इसे अधिक स्थिर बनाती है। निरन्तरता शिक्षा की एक विशेषता है, मगर यह अपनी प्रकृति और संयोजन में परिवर्तन के लिए प्रवृत्त होती है। विकास के सभी क्षेत्र शिक्षा की इस प्रक्रिया में योगदान देते हैं। इसलिए, इसे अनुचित प्रभावों और अन्य प्रक्रियाओं की अनिश्चितताओं से मुक्त या उनके प्रति प्रतिरोधक क्षमता से युक्त होना चाहिए। यही कारण है कि शिक्षा को आमतौर पर सैद्धान्तिक और आदर्श रूप में अराजनीतिक समझा जाता है और इसे अपने स्वायत्त संगठनात्मक ढाँचे के भीतर कार्य करने की अनुमति दी जाती है।
3. पूर्व में उपलब्ध कराए गए प्रक्रियात्मक विवरण का उद्देश्य शिक्षा के पुनर्निर्माण के निर्णय पर पहुँचने और अन्ततः नीति सम्बन्धी दस्तावेजों में उनके समावेश से सम्बन्धित कई चरणों की प्रक्रियाओं को सामने लाना है। यह न केवल संघीय शासन प्रणाली के लिए बल्कि शिक्षा में विकेन्द्रीकरण के लिए भी प्रासंगिक है।

इससे विद्यालयीन पाठ्यचर्या का खाका बनाने और उसे गढ़े जाने की माँगों को पहचानने की जरूरत रेखांकित होती है। परिणामस्वरूप, यह देश भर की विभिन्न सांस्कृतिक विशेषताओं को पाठ्यचर्या सामग्री में शामिल करने को ज़रूरी बनाएगा। पाठ्यचर्या विकास की एक ऐसी योजना

में, मुख्य निर्माण स्थल विद्यालय या जिला शैक्षणिक प्रशिक्षण संस्थान (DIET) जैसे स्थानीय केन्द्र होंगे; हालाँकि, दूरदराज के केन्द्रों से जुटाव के समुचित प्रयासों के जरिए अतिरिक्त विशेषज्ञता उपलब्ध कराई जाएगी।

शैक्षणिक पुनर्निर्माण के लिए एक प्रमुख अवधारणा के रूप में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का उद्भव

1970 के दशक के आरम्भ में, राष्ट्रीय विकास और राष्ट्र की नियति से जुड़े मुद्दे अधिक व्यापक रूप से उभरे। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विमर्शों में समानता, निष्पक्षता, सामाजिक न्याय, सेकुलरवाद आदि को अधिक स्थान मिला। शिक्षा कोई अपवाद नहीं थी।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने इस मुद्दे से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की थी, जो समग्र राष्ट्रीय विकास में योगदान देने वाली एक उप-प्रणाली के रूप में शिक्षा के पुनर्निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करती थी। कुछ ऐसी सिफारिशों का उल्लेख नीचे किया गया है।

1. 10+2+3 के एक राष्ट्रीय स्वरूप के सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने ठोस रूप ग्रहण कर लिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) 1968 की रोशनी में इसे अंगीकार करने के लिए भारत सरकार द्वारा स्वीकार किया गया।[8]
2. शिक्षा के प्रत्येक चरण को ऐसा बनाया जाना था कि वह राष्ट्रीय विकास के लक्ष्य को आगे बढ़ाने में सहायक हो; इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यवसायपरकता और कार्य अनुभव को पाठ्यचर्या के लिए मुख्य आगत या इनपुट्स के रूप में शिक्षा प्रणाली में शामिल किया जाना था।
3. शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, भारतीय संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त किए गए मूलभूत मूल्यों, और उसमें सूचीबद्ध किए गए सामाजिक जीवन के अन्य मानदण्डों को शिक्षण प्रक्रियाओं में शामिल किया जाना था।
4. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, स्वतंत्रता संग्राम की अवधि के दौरान शिक्षा को राष्ट्रीय नियंत्रण में लाने की माँग की अत्यधिक प्रासंगिकता थी। हालाँकि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में यह माँग स्वाभाविक रूप से अनावश्यक हो गई। इसके अलावा, एक सम्प्रभु गणराज्य के रूप में भारत ने संघीय शासन प्रणाली अपनाई। तदनुसार, शिक्षा का प्रबन्ध सत्ता के 'विकेन्द्रीकरण' के माध्यम से किया जाना था, राष्ट्रीय स्तर के प्राधिकरण से स्थानीय स्व-शासन प्रणाली तक, विशेषकर भारतीय संविधान में 73वें और 74वें संशोधन को अपनाए जाने के बाद।

इसके अलावा, शिक्षा विकास प्रक्रियाओं का एक क्षेत्र है, जिसकी समस्याओं को पेशेवर ढंग से उपयुक्त शैक्षणिक और तकनीकी ज्ञान का उपयोग करते हुए हल किया जाना होता है। इसलिए, राष्ट्रीय स्तर से स्थानीय स्तर तक, भले ही शैक्षणिक प्रणाली में कोई स्पष्ट प्रशासनिक पदानुक्रम मौजूद हो, विभिन्न चरणों में समस्याओं और मुद्दों की प्रकृति में कोई अन्तर नहीं होता है, जिन्हें शैक्षणिक और तकनीकी ढंग से निपटाने की आवश्यकता होती है। नि:संदेह, सभी स्तरों पर शिक्षा की चुनौतियाँ ज्ञानमीमांसीय दृष्टि से समान रूप से जटिल होती हैं। इसके अलावा, सांगठनिक दृष्टि से, शिक्षा के निचले स्तर पर, जैसे कि प्राथमिक शिक्षा, शैक्षणिक समस्याएँ शिक्षा के उच्चतर चरणों की तुलना में अधिक कठिन और चुनौतीपूर्ण हो सकती हैं।

शिक्षा और उसकी प्रक्रियाओं के उपरोक्त वर्णन को देखते हुए, यह कहा जा सकता है कि :

- समाज की चिरस्थाई आकांक्षाओं और मूल्यों की परिकल्पना के आधार पर शिक्षा के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। मूलतः परिकल्पना में उस प्रकार का समाज प्रतिबिंबित होना चाहिए, जो हम निर्मित करना चाहते हैं और उस तरह के नागरिक प्रतिबिंबित होने चाहिए जैसा हम अपने बच्चों को बनाना चाहते हैं। परिकल्पना से सचेतन रूप से और वरीयतापूर्वक विकसित व्यक्तियों के आचरण सम्बन्धी गुण और सामाजिक जीवन में सहभागी रूप से संजोए और साझे किए मूल्यों को भी और निकाले जाने की जरूरत है।
- शिक्षा की परिकल्पना का सूत्रीकरण तो राष्ट्रीय (बृहत) स्तर पर किया जाना है, मगर इसे वास्तविक रूप से विशिष्ट परिस्थितियों में (लघु स्तर पर) संयोजित पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के माध्यम से साकार किया जाना है।
- इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाएँ ऐसी गतिविधियों और कार्यक्रमों के रूप में अवलोकनीय हैं, जिनमें शिक्षक और छात्र भाग लेते हैं। हालाँकि, ये सभी विशिष्ट गतिविधियाँ, कार्यक्रम, और पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाएँ शिक्षा की 'परिकल्पना' से अपनी समग्र दिशा ग्रहण करती हैं। इसलिए, 'प्रबोधनकारी प्रक्रिया' को छात्रों के बीच 'क्या-क्या' और 'किस रूप में' प्रस्तुत किया जाना चाहिए, इसके निर्धारण में परिकल्पना एक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड की भूमिका निभाती है।

इन विचारों के प्रत्युतर में एक ऐसा 'प्रतिमान' निर्मित करने की आवश्यकता महसूस की गई, जो मूर्त रूप से शिक्षण प्रक्रिया के सभी पहलुओं को प्रतिबिंबित कर सके। इस प्रकार एक 'मुख्य अवधारणा' की आवश्यकता उभरी जो 'शिक्षण' या 'पढ़ाई-लिखाई' के सैद्धान्तिक सार और साथ ही आवश्यक सांगठनिक ढाँचों सहित ठोस कार्रवाइयों और उनके प्रबन्धन के सन्दर्भ में पेशेवर

कुशलता के महत्त्व को प्रकट कर सके। हमारा देश विशाल है, जहाँ अद्भुत सांस्कृतिक विविधताएँ, और एक संघीय शासन प्रणाली है। इसलिए यह और ज्यादा जरूरी है कि ऐसी एक 'मुख्य अवधारणा' हो, जो विभिन्न एवं लचीले रूपों में शिक्षण प्रक्रिया की संकल्पना गढ़ने या उसे समझने में सहायक हो, फिर भी समूची राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में मूल समानताओं को बनाए रखे।

इसलिए, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा ने 1970 के दशक में एक ऐसी मुख्य अवधारणा के रूप में प्रमुखता प्राप्त कर ली, जो ऐसे उद्देश्य को पूरा सके : देश में शिक्षा की समूची प्रक्रिया की संकल्पना निर्मित करना, उसे संयोजित करना, और उसका प्रबन्धन करना, जिसमें शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों के बीच स्पष्ट सम्बन्ध हो, जो इसकी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से पूर्ण किए जाने थे।

1970 के दशक के आरम्भ में, इसने शैक्षणिक पुनर्निर्माण के विमर्श में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। 1970 के दशक के मध्य से, शालेय शिक्षा के लिए चार पाठ्यचर्या रूपरेखाएँ जारी की गई हैं (1975, 1988, 2000, और 2005)। आइए हम उनकी मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए संक्षेप में उनकी समीक्षा करें।

2. दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या: एक रूपरेखा

पृष्ठभूमि

जैसी कि पहले चर्चा की गई थी, शिक्षा आयोग (1964-66) की रिपोर्ट शैक्षणिक पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक रूपरेखा थी। इसकी मुख्य अनुशंसाएँ भारत सरकार के नीतिगत प्रस्ताव 1968 में शामिल की गई थी। बाद में, मुख्य कार्य तदनुसार एक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करना था जो अपने उद्देश्यों, सामग्री, और पद्धतियों के माध्यम से, भारतीय समाज की आवश्यकताओं (अनुभूत और उदीयमान, दोनों प्रकार की) को पूरा करे।

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय ने 10+2 प्रणाली के आधार पर पाठ्यचर्या विकसित करने के लिए 1973 में एक विशेषज्ञ समूह गठित किया। हालाँकि, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) द्वारा माध्यमिक विद्यालय स्तर के लिए 1972 में एक पाठ्यचर्या तैयार की जा चुकी थी, जिसे 1973 में संशोधित किया गया। 1974 में, विशेषज्ञ समूह में एनसीईआरटी से सदस्यों को शामिल करने के लिए इसका विस्तार किया गया, जिन्होंने विद्यालय पाठ्यचर्या का अपना एक संस्करण तैयार किया था। विस्तारित समूह में एनसीईआरटी और देश के अन्य संस्थानों के 40 विशेषज्ञ शामिल थे। एनसीईआरटी द्वारा 1975 में प्रकाशित अन्तिम संस्करण, ‘द करिकुलम फॉर द टेन-इयर स्कूल : ए फ्रेमवर्क’ (दस वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यचर्या: एक रूपरेखा), राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1968 में शामिल शिक्षा आयोग की अनुशंसाओं को मूर्त रूप देने की एक कोशिश थी।

यहाँ यह टिप्पणी की जा सकती है कि 1970 के दशक में, एनसीईआरटी से अन्य बातों के साथ-साथ एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली निर्मित करने की प्रक्रिया में बृहत्तर भूमिका निभाने की अपेक्षा की जा रही थी। इस प्रकार एनसीईआरटी को राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में एक ‘मुख्य संगठन’ के रूप में मान्यता मिली। आगे यह परिकल्पित किया गया कि शिक्षा के क्षेत्र में राज्य शिक्षा संस्थानों और राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषदों (एससीईआरटी) जैसे राज्य-स्तरीय संस्थान, विधिवत रूप से सुदृढ़ किए जाते हुए, शिक्षा और इसकी प्रक्रियाओं के संगठन के एक विकेन्द्रीकृत स्वरूप के साथ देश भर में शैक्षणिक पुनर्निर्माण कार्यक्रमों के वास्तविक कार्यान्वयन को सुगम बनाने में एक सहयोगी भूमिका निभाएँगे।

मुख्य विशेषताएँ

विविधताओं की पृष्ठभूमि

दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या में भाषा, सामाजिक प्रथाओं, शिष्टाचारों, रीति-रिवाजों, और आर्थिक विकास सम्बन्धी विविधताओं का एक प्रासंगिक पृष्ठभूमि के रूप में ध्यान रखा गया। इसने यह माना कि इस तरह की विविधताएँ विद्यालय पाठ्यचर्या को अलग-अलग दिशाओं में खींचेंगी, जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदल जाती हैं। इसलिए, प्रथम सिद्धान्त के रूप में, दस्तावेज में एक ऐसी समान पाठ्यचर्या की परिकल्पना की गई, जो स्वीकार्य सिद्धान्तों और मूल्यों पर केन्द्रित हो। इसे शिक्षा में पेशेवर कुशलता लाने और कक्षा में पाठ्यचर्या सम्बन्धी वास्तविक अनुभवों और निर्धारित पाठ्यचर्या के बीच विसंगति को कम करने का एक प्रभावी उपाय समझा गया। इसके लिए यह आवश्यक था कि शिक्षक और छात्र न केवल मौलिक मूल्यों से परिचित हों, बल्कि अपने दैनिक जीवन में उन्हें पहचानने और अपनाने में भी समर्थ हों। इन मूल्यों का भारतीय संविधान में दिए गए मूल्यों के अनुरूप होना आवश्यक था। इसने एक ओर स्वीकृत मूल्यों, और दूसरी ओर लोगों के जीवन, जरूरतों और अपेक्षाओं को एक-दूसरे के निकट लाने का काम किया। इस प्रकार, 'सामाजिक उद्देश्य' के आयाम को रेखांकित करना इसका लक्ष्य था।

कार्य अनुभव

दस वर्षीय विद्यालय पाठ्यचर्या में इस बात पर जोर दिया गया कि कार्य अनुभव प्रत्येक चरण में विद्यालयीन शिक्षा की मुख्य विशेषता होनी चाहिए। इसका लक्ष्य शिक्षा प्रक्रिया में दो विशेषताएँ शामिल करने का था। पहली, पाठ्यचर्या को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के उपयोग की दिशा में और कृषि एवं उद्योग में उत्पादक प्रक्रियाओं की दिशा में भी प्रवृत्त किया जाना था। इससे मुख्यतः पाठ्यचर्या को विकासोन्मुखी दिशा प्रदान की जानी थी। दूसरी, छात्रों को अपने हाथों से कार्य करने का अवसर दिया जाना था और इस प्रकार एक ही उत्पादक प्रक्रिया में शामिल विभिन्न भौतिक घटनाओं और मानवीय सम्बन्धों को उन्हें स्वयं देखना-समझना था। इसका उद्देश्य स्वभावगत रवैए में परिवर्तन लाने की दिशा में सहायता करना था। इसके अलावा, छात्रों द्वारा इस प्रकार प्राप्त की गई अन्तर्दृष्टियाँ और उपयोगी हो जाएँगी, जब वे जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं और सामाजिक अपेक्षाओं से जुड़ेंगी। ये नतीजे अध्ययन की दुनिया और कार्य की दुनिया को निकट लाएँगे।

ज्ञान की अन्तर्विषयक प्रकृति

दस्तावेज ने शिक्षण-अधिगम पद्धति के माध्यम से पाठ्यचर्या सामग्री और उसकी प्रस्तुति को समूहबद्ध करने के महत्त्व को भी बार-बार दोहराया। इस सिद्धान्त के अनुसार, मानवीय अनुभव के माध्यम से प्रकट होने वाला ज्ञान अपने आप में अन्तर्विषयक होता है। यह सामग्री को 'विषयों' के बजाय 'इकाइयों' के रूप में संगठित करने की माँग करता है। इस दृष्टिकोण के दो लाभ हैं : पहला, बच्चा एक शिक्षण इकाई से सम्बन्धित शिक्षण-अधिगम स्थिति में ज्ञान की बहु-पक्षीय प्रकृति के सम्पर्क में आता है। जब पाठ्यचर्या और शिक्षण को एक एकल 'विषय' के संकुचित दायरे में क्रियान्वित किया जाता है तब बच्चे को ऐसी अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती है। पाठ्यचर्या और शिक्षण-अधिगम को संयोजित करने में बहुविषयकता का यह सिद्धान्त ज्ञान की ज्ञानात्मक प्रकृति पर आधारित है। दूसरा, जब भी किसी समस्या का गहनतापूर्वक परीक्षण किया जाता है तो वह एक अन्तर्विषयक कवायद बनने की तरफ प्रवृत्त होती है। इससे ज्ञान को अन्तर्विषयक तरीके से देखने और विशिष्ट स्थितियों के माध्यम से होने वाले उसके प्रकटीकरण का मूल्यांकन करने के महत्त्व से छात्रों को परिचित कराने का पक्ष मजबूत होता है। इस दृष्टिकोण का लक्ष्य छात्रों को बेहतर क्षमताओं से सुसज्जित करना है, जिनमें आलोचनात्मक सोच, समस्या समाधान के कौशल, ज्ञान के विभिन्न अवयवों के प्रयोग, कौशल एवं अन्य समर्थताएँ और संश्लेषण जैसी क्षमताएँ हैं।

सामाजिक संवेदनशीलता

दस वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या में सामाजिक संवेदनशीलता से सम्बन्धित पाठ्यचर्या निवेश (इनपुट्स) पर जोर दिया गया। इसमें सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय अखण्डता, और लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे सरोकारों पर जोर दिया गया, जिसका उद्देश्य इन मुद्दों को पाठ्यचर्या निर्माण के विमर्श में शामिल करना था।

अध्ययन के क्षेत्रों में सन्तुलन

अध्ययन के क्षेत्रों में सममूल्यता बढ़ाने की जरूरत को रेखांकित किया गया। इसमें "कलात्मक अनुभव एवं अभिव्यक्ति", "शारीरिक शिक्षा", और "चरित्र निर्माण एवं मानवीय मूल्यों" जैसे क्षेत्रों

के लिए पाठ्यचर्या में और अधिक स्थान रखने की अनुशंसा की गई, जिन्हें विगत में पाठ्यचर्या में कम महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

बुनियादी पाठ्यचर्या

बुनियादी पाठ्यचर्या को सामान्य अध्ययन के एक कार्यक्रम के माध्यम से पढ़ाया जाना था। फिर भी प्रतिभाशाली छात्रों और कुछ क्षेत्रों में कमजोर छात्रों की भी विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति इस उद्देश्य के लिए चिन्हित क्षेत्रों में उनके हिसाब से विकसित की गई शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध करा कर की जानी थी।

पेडॅगोजि सम्बन्धी सिद्धान्त

दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या में पेडॅगोजि सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धान्तों पर जोर दिया गया।

1. किसी विशेष विषय को पढ़ाने के लिए पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया की उपयुक्तता उस विषय के क्षेत्र में विषय वस्तु के ज्ञान की प्रकृति पर निर्भर होती है।
2. बच्चे का संज्ञानात्मक विकास और अन्य अधिगम स्थितियाँ भी किसी दिए गए विषय को पढ़ाने के लिए - पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया की उपयुक्तता को निर्धारित करती हैं।
3. विद्यार्थियों में मूल्यों के विकास और उनके दृष्टिकोण को दिशा देने के प्रयास विभिन्न विषयों की विशिष्ट शिक्षण सामग्री से अलग-अलग तरीके से जुड़े होते हैं। यही कारण है कि छात्रों में इन खूबियों के विकास में योगदान की कुछ क्षमता प्रत्येक विषय की सामग्री में रहती है। जब शिक्षक एक ओर इन मूल्यों और दृष्टिकोणों के बीच मौजूद अलग-अलग सम्बन्धों को जज्ब कर आत्मसात करता है, दूसरी ओर छात्रों में इन खूबियों के विकास को सुगम बनाने के लिए विभिन्न विषयों की सामग्री की क्षमता का उपयोग करता है, उसका अपना पेडॅगोजि सम्बन्धी सामर्थ्य बढ़ता है। यह ऐसी अन्तर्दृष्टि विकसित करने में उसकी सहायता करती है, जो एक दी गई स्थिति में छात्रों के एक दिए गए समूह के लिए शिक्षण-प्रक्रिया को आकार दे सके।

यह सिद्धान्त पेडॅगोजि सम्बन्धी परिस्थितियों के सन्दर्भ में ज्ञान की प्रकृति पर आधारित है। ऐसे ज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं।

- विषयों के आनुशासनिक क्षेत्रों - अकादमिक, तकनीकी, और व्यावसायिक के लिहाज से ज्ञान की प्रकृति में अन्तर होता है।
- ज्ञान की प्रकृति, ज्ञान की प्राप्ति और संप्रेषण के लिए अनुकूल पद्धतियों को भी इंगित करती है। इसलिए ज्ञान और उसकी प्राप्ति एवं संप्रेषण एक-दूसरे के साथ निकटता से जुड़े हुए होते हैं।
- चूँकि ज्ञान का अनुप्रयोग और इससे जुड़ी अन्तर्दृष्टियाँ पेडॅगोजि सम्बन्धी सामर्थ्य का एक अभिन्न अंग है, एक शिक्षक अपनी स्वयं की शिक्षण शैली निर्मित और विकसित करने में एक मुख्य भूमिका निभाता है, जो अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत होती है।

छात्रों को प्रदान किए जाने वाले समस्त शैक्षणिक अनुभवों – जो विचारपूर्वक चुने गए और इरादतन रूप से नियोजित किए गए हों – के समुच्चय के कुल योग के रूप में किसी पाठ्यचर्या की अवधारणा बनाई जा सकती है। इस उद्देश्य से, कुछ कार्यभारों को पूरा करने के लिए कुछ व्यवस्थित इन्तजामों की आवश्यकता होती है, जिनके परिणाम पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया में उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए,

- पाठ्यपुस्तकों और अन्य अधिगम सामग्रियों एवं उपकरणों को विकसित, प्रकाशित व वितरित करने और बाजार में ले जाने की आवश्यकता होती है ताकि शिक्षार्थियों को उनकी उपलब्धता सुनिश्चित हो सके।
- समुचित ढंग से प्रशिक्षित और पेडॅगोजि सम्बन्धी क्षमता से लैस शिक्षकों द्वारा अधिगम सामग्रियों का उचित उपयोग। यह अध्यापक शिक्षा की प्रणाली को पाठ्यचर्या और उसे कार्यान्वयन के और निकट लाता है।
- एक कार्यकुशल और भलीभाँति विकसित मूल्यांकन प्रणाली के माध्यम से अधिगम सम्बन्धी उपलब्धियों और छात्रों, पालकों, शिक्षकों, और पर्यवेक्षी कर्मियों को उपलब्ध कराई गई प्रतिक्रिया (फीडबैक) का आकलन।

दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या ने अनेक ब्यौरे उपलब्ध कराए हैं जैसे कि उपरोक्त विवरण जो बनाए जाने वाले पाठ्यचर्या के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अनिवार्य हैं।

इस प्रकार, पाठ्यचर्या की तुलना में इस दस्तावेज में और बाद में जारी की गई अन्य पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में अनुभवों व कार्याभ्यासों, और उनके प्रबन्धन का अधिक विस्तृत क्षेत्र शामिल किया गया है। 'पाठ्यचर्या' के दायरे में छात्रों को उपलब्ध कराए जाने वाले शैक्षणिक अनुभव शामिल हैं जो उन्हें 'स्कूली शिक्षा' के लक्ष्य प्राप्त करने में सक्षम बनाते हैं। 'पाठ्यचर्या की रूपरेखा' उस

बुनियादी संरचना का प्रावधान भी करती है, जो शिक्षार्थियों के लिए सहभागिता के माध्यम से शैक्षणिक अनुभव के व्यवस्थापन के लिए आवश्यक है।

अध्ययन की योजनाएँ

दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या में प्रस्तुत की गई विद्यालयीन कार्य के क्षेत्रों की योजना निम्नानुसार है। योजना संकल्पनात्मक है और आदेशात्मक नहीं है।

विद्यालयीन कार्य के क्षेत्र

कक्षा I और II

1. पहली भाषा
2. गणित
3. पर्यावरण अध्ययन (सामाजिक अध्ययन और सामान्य विज्ञान)
4. कार्य अनुभव और कलाएँ
5. स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

कक्षा III, IV और V

1. पहली भाषा
2. गणित
3. पर्यावरण अध्ययन I (सामाजिक अध्ययन)
4. पर्यावरण अध्ययन II (सामान्य विज्ञान)
5. कार्य अनुभव और कलाएँ
6. स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

कक्षा VI, VII और VIII

1. पहली भाषा जारी रहेगी और एक दूसरी भाषा जुड़ेगी (हिन्दी या अंग्रेजी)
2. गणित (बीजगणित और ज्यामिति सहित)
3. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र के मूल तत्व)
4. विज्ञान (भौतिकीय विज्ञानों और जीव विज्ञान के मूल तत्व)

5. कलाएँ

6. कार्य अनुभव

7. शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

कक्षा IX और X

1. पहली और दूसरी भाषाएँ जारी रहेंगी और एक तीसरी भाषा जुड़ेगी (अंग्रेजी या कोई अन्य भारतीय भाषा)

2. गणित (बीजगणित और ज्यामिति सहित)

3. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान)

4. विज्ञान (भौतिकीय विज्ञानों और जीव विज्ञान के मूल तत्व)

5. कलाएँ

6. कार्य अनुभव

7. शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेल

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 द्वारा अपनाए गए शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप, 10+2+3, के कार्यान्वयन से हासिल की गई राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की संरचनात्मक एकरूपता एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। दूसरी मुख्य उपलब्धि देश भर में एक साझा पाठ्यचर्या संरचना की अनुशंसा थी, जिसे समुचित लचीलेपन और पेडॅगोजि सम्बन्धी लिहाज से विविधता के साथ लागू किया जाना था।

लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि दस-वर्षीय विद्यालय के लिए अनुशंसित साझी पाठ्यचर्या से दूसरी समस्याएँ पैदा हो गई, जिनमें से पाठ्यचर्या का भार मुख्य मुद्दा बनकर उभरा। इनमें से कुछ समस्याओं पर समीक्षा समिति ने 1977 में ध्यान दिया और सम्भावित समाधान प्रस्तावित किए। 1977 में, एक समीक्षा समिति, जिसे लोकप्रिय रूप से ईश्वरभाई पटेल समिति के रूप में जाना जाता है, ने इस समस्या की जाँच की। प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक चरणों में अध्ययन के विषय क्षेत्रों के बारे में एक व्यापक सहमति बन गई। समिति द्वारा प्रस्तुत की गई मुख्य सिफारिशें इस तरह थी :

- किसी दिए गए विषय क्षेत्र के तहत अध्ययन की जाने वाली इकाइयाँ, मोटेतौर पर सभी के लिए समान होनी चाहिए, लेकिन आवश्यकता के हिसाब से लचीलेपन पर बल दिया गया था ताकि विद्यालयीन शिक्षा मण्डलों द्वारा किसी विषय क्षेत्र की इकाइयों का विस्तृत ब्यौरा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार तैयार किया जा सके।

- किसी विशेष रुचि या प्रतिभा के विकास के लिए विद्यार्थियों को निर्धारित सूची में से किसी एक वैकल्पिक विषय के अध्ययन की अनुमति देना।
- माध्यमिक स्तर पर गणित और विज्ञान में पाठ्यक्रमों के विभिन्न स्तरों का परिचय।
- सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को शामिल करने के लिए कार्य अनुभव की बहुत व्यापक अवधारणा निर्मित की गई। इस प्रकार इसका नाम बदलकर सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य (एसयूपीडब्ल्यू) कर दिया गया।

इस प्रकार, दस वर्ष तक चलने वाली विद्यालयीन शिक्षा (कक्षा I से X तक) या सामान्य शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को उनके प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के बारे में सामान्य जागरूकता प्राप्त करने में सक्षम बनाना है। घटनाओं के अवलोकन और विभिन्न गतिविधियों में सहभागिता के माध्यम से विकसित होने वाली यह जागरूकता, पर्यावरणीय घटनाओं और सामाजिक संरचनाओं को अधिक सार्थक समझ की दिशा में ले जाती है। इस तरह की समझ के लिए आवश्यक ज्ञान को समग्र या एकीकृत माना जाता है। इसलिए सामान्य शिक्षा के स्तर पर अध्ययन के क्षेत्र व्यापक पाठ्यचर्या क्षेत्र हैं, जैसे भाषा, पर्यावरण अध्ययन, सामाजिक अध्ययन, गणितीय संक्रियाएँ, शारीरिक शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल, कला शिक्षा, आदि। इन विषयों के सम्पर्क में आने से बच्चे इन विषयों को समझने में सक्षम बनते हैं:-

- प्रणालियों के रूप में पर्यावरण सम्बन्धी घटनाएँ और गतिविधियाँ;
- सामाजिक संरचनाओं का सतत विकास;
- किस तरह विभिन्न कौशल विकसित हुए, अभिवृत्ति सम्बन्धी रुझान हासिल किए गए, और मूल्यों को व्यक्तिगत जीवन का हिस्सा बनाया गया – यह सब विभिन्न विकास क्षेत्रों और सामाजिक संरचनाओं, साथ ही साथ सभ्यता, संस्कृति, सहयोग, अधिकारों और कर्तव्यों जैसी व्यापक अवधारणाओं की समझ में प्रतिबिंबित होते हैं।

दूसरे शब्दों में, विद्यालयीन शिक्षा के पहले दस वर्षों के दौरान सामान्य शिक्षा पाठ्यचर्या के माध्यम से, पर्यावरण की समझ और समाज में विभिन्न गतिविधियों और कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता के लिए आवश्यक कौशल और अन्य क्षमताओं से बच्चों को सुसज्जित किया जाता है। इन्हें व्यक्तिगत विकास और सामाजिक प्रगति दोनों में सार्थक और उत्पादक भागीदारी के लिए अनिवार्य माना जाता है। एकीकृत ज्ञान और सामान्य सामर्थ्य अधिक विशिष्ट गतिविधियों और लक्ष्यों के लिए एक आधार के रूप में काम करते हैं। यह लक्ष्य चुने गए अध्ययन क्षेत्रों की गहरी समझ की दिशा में ले जाते हैं। यह गहरी समझ छात्र को चुने हुए अध्ययन क्षेत्र में विशिष्ट ज्ञान

प्राप्त करने और अकादमिक और व्यावसायिक दोनों तरह के अधिक विशिष्ट कार्य करने में सक्षम बनाती है।

विद्यालयीन शिक्षा के उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, ज्ञान को अधिक विशिष्ट तरीकों से देखने की आवश्यकता पाठ्यचर्या की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता बन जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर देश भर के लिए पाठ्यचर्या को मूर्त रूप देने की कोशिश पहली बार 1976 में की गई थी। पाठ्यक्रम की योजना और अन्य विवरण आगे के खण्डों में प्रस्तुत किए गए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1968 का मुख्य जोर शिक्षा को मोटेतौर पर 'विकास' और 'सामाजिक परिवर्तन' से जोड़ने पर था। विशेष रूप से उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए, 1970 के दशक में उद्योग और वाणिज्य, कृषि, स्वास्थ्य और सामुदायिक विकास जैसे विकास क्षेत्रों और विद्यालयों के बीच 'मजबूत कड़ियाँ' निर्मित करने की तत्काल आवश्यकता महसूस की गई। इन सम्बन्धों के निर्माण के लिए एक नई चेतना और सोच की आवश्यकता थी। आन्तरिक पुनर्गठन और शिक्षा की अन्तर्वस्तु में संशोधन के साथ-साथ उपयुक्त कड़ियाँ विकसित कर इसे कार्यान्वित किया जा सकता है, जिस पर ऊपर चर्चा की गई है।

इस लक्ष्य की दिशा में, एनसीईआरटी ने एक मसौदा दस्तावेज तैयार किया, जो उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा में व्यावसायिकता के प्रति दृष्टिकोण की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। दस्तावेज़ ने योजना को लागू करने के लिए एक मॉडल भी प्रस्तावित किया। कार्यान्वयन के लिए प्रस्तावित दृष्टिकोण और मॉडल पर जून 1976 में हुए एक राष्ट्रीय सम्मेलन में शिक्षाविदों, कुलपतियों, शिक्षा सचिवों, राज्यों के लोक शिक्षण निदेशकों, माध्यमिक शिक्षा मण्डलों के प्रतिनिधियों, और शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, श्रम और उद्योग मंत्रालयों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में किए गए विचार-विमर्श के आधार पर विभिन्न मुद्दों पर एक बड़ी सर्वसम्मति उभरी।

आरम्भ में शिक्षा मंत्रालय द्वारा गठित की गई पाठ्यचर्या समिति, जिसे बाद में एनसीईआरटी द्वारा विस्तारित कर संचालित किया गया, को दस्तावेज को अन्तिम रूप देने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। एनसीईआरटी द्वारा सितंबर 1976 में 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और इसका व्यावसायीकरण' (हायर सेकण्डरी एजुकेशन एंड इट्स वोकेशनलाइज़ेशन) शीर्षक से अन्तिम मसौदा प्रकाशित किया गया।

प्रस्तावित मॉडल की विशेषताएँ

व्यावसायिक शिक्षा : वैचारिक रूपरेखा

व्यावसायिक शिक्षा को एक शैक्षिक सन्दर्भ में रखने के उद्देश्य से, यह दस्तावेज़ व्यावसायिक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को व्यापक अर्थ देता है। संक्षेप में, दस्तावेज़ शब्द के अवधारणात्मक अर्थ को रेखांकित करता है, जिससे आगे चलकर इसकी प्रक्रियाओं के संचालन और सम्बन्धित प्रणालियों के प्रबन्धन के लिए मार्गदर्शन मिल सके।

व्यवसायीकृत उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की प्रणाली को महज तकनीशियन के प्रशिक्षण के समान नहीं माना जा सकता; निश्चित रूप से इस शब्द के व्यापक अर्थ में शिक्षा है। यह सामाजिक वास्तविकता को समझने और उस आर्थिक विकास के ढाँचे के भीतर अपनी क्षमता की सम्भावनाओं का एहसास करने के लिए व्यक्ति को तैयार और विकसित करती है, जिसमें व्यक्ति योगदान देता है। शिक्षा नौकरियाँ पैदा नहीं करती है, लेकिन व्यवसायीकृत शिक्षा के माध्यम से एक व्यक्ति के लिए नौकरी पाने की या स्वयं स्वामी के रूप में उसके द्वारा एक नई उत्पादक गतिविधि या सेवा शुरू करने की अधिक सम्भावना पैदा होती है, जो समुदाय द्वारा महसूस की गई आवश्यकता को सन्तुष्ट कर सकती है। एक व्यक्ति के लिए शैक्षणिक क्षितिज को व्यापक बनाकर, यह उसे स्वाध्याय के माध्यम से उपलब्धि के उच्चतर स्तरों तक पहुँचने में सक्षम बनाती है।[9]

विविधीकरण और लचीलापन

शैक्षणिक और रोजगार से जुड़े कारणों से अविलंब एक विविधतापूर्ण उच्चतर माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। विविधतापूर्ण योजना के तहत दो प्रमुख धाराएँ होंगी - अकादमिक और व्यावसायिक। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अकादमिक धाराएँ “छात्रों के 50 प्रतिशत तक की” जरूरतों को पूरा करेंगी। इसलिए, व्यावसायिकता के अनेक क्षेत्रों में शिक्षा और प्रशिक्षण की अधिक सम्भावनाओं के साथ व्यावसायिक धाराओं के लिए प्रावधान होगा। व्यावसायिक धाराएँ आमतौर पर इस अर्थ में अन्तिम गंतव्य होंगी कि उनके प्राप्तकर्ता इन धाराओं के पूरा होने पर, रोजगार प्राप्त कर सकते हैं या स्वरोजगार अपना सकते हैं। अकादमिक धाराएँ भी अन्तिम गंतव्य होंगी, लेकिन साथ ही वे शिक्षा के तृतीय स्तर के लिए सहायक का कार्य करेंगी।

इस तरह विकसित प्रणाली निम्नलिखित सन्दर्भों में लचीली होगी।

- छात्रों को अकादमिक से व्यावसायिक धारा और इसके उलट क्रम में भेजा जा सकेगा, यहाँ तक कि पाठ्यक्रम के बीच में भी।
- अंशकालिक और पत्राचार प्रणाली के माध्यम से कुछ पाठ्यक्रमों के अध्ययन के लिए प्रावधान किया जाएगा।
- अन्य अपनाए गए उपायों में शामिल हैं :
  - पाठ्यक्रम के संयोजनों के विस्तृत विकल्पों का प्रावधान
  - 'सेतु' और उपचारात्मक पाठ्यक्रमों की शुरुआत
  - एक तरह के संस्थान से दूसरे में स्थानांतरण
  - कुछ व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की परिवर्तनीय अवधियों का प्रावधान।

व्यवसायीकृत शिक्षा के लिए प्रणालीगत सुधार

ऊपर वर्णित विशेषताओं - अवधारणात्मक और संगठनात्मक - के आधार पर व्यवसायीकृत उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन को मूर्त रूप देने के लिए निम्नलिखित प्रणालीगत सुधारों की अनुशंसा की गई है।

पुनर्गठन

पाठ्यचर्या के अध्ययन के तरीकों को लचीलेपन के साथ संयोजित करने के लिए, दस्तावेज़ पाठ्यक्रम सामग्री, उनके अध्ययन और मूल्यांकन के उचित पुनर्गठन का सुझाव देता है। उदाहरण के लिए, परिवर्तनीय अवधि के पाठ्यक्रमों - डेढ़ से तीन साल के बीच की अवधि के - को एक सम्भावना के रूप में देखा गया, जो सम्भवतया दो-वर्षीय लम्बे विषय-वार पाठ्यक्रमों और सम्बन्धित वार्षिक या दो-वर्षीय परीक्षाओं के माध्यम से मुश्किल से प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। परिवर्तन करते हुए सेमेस्टर-क्रेडिट प्रणाली को अपनाना इस तरह के पाठ्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक सुगम तरीका हो सकता है। यह सुझाव दिया गया कि भले ही इस परिवर्तन को शिक्षा के व्यावसायीकरण की शुरुआत के लिए एक पूर्व शर्त नहीं माना गया है, यह एक सहवर्ती उपाय है और इसे ऐसे ही लिया जाना चाहिए।

अकादमिक और व्यावसायिक धाराओं के लिए विद्यालय

उच्च माध्यमिक विद्यालयों या अन्य संस्थानों को जिनमें +2 कक्षाएँ हैं (जो उच्चतर माध्यमिक चरण का एक हिस्सा बन गई हैं), को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में परिवर्तित करते समय उभरने वाली किसी भी तरह की संरचनात्मक समस्याओं से निपटने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की गई थी :

I. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा विद्यालयीन चरण का एक हिस्सा है न कि तृतीयक स्तर का। ऐसे विद्यालयों के स्टाफ को स्पष्ट रूप से विद्यालयीन स्टाफ के रूप में नामित किया जाना चाहिए और उन्हें उनकी योग्यता, शैक्षणिक और व्यावसायिक दोनों, और अन्य सेवा शर्तों के सम्बन्ध में विद्यालयीन मानदण्डों के अनुसार नियुक्त किया जाना चाहिए।

II. इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे माध्यमिक विद्यालय मानव और भौतिक संसाधनों के सन्दर्भ में भलीभाँति सुसज्जित हों; और, जो वैसे भी अच्छे विद्यालय माने जाते हों, संसाधनों की उचित वृद्धि के साथ उच्चतर माध्यमिक स्तर तक उन्नयन के लिए उपयुक्त हों।

चूँकि माना जाता है कि सभी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अन्ततः अकादमिक और व्यावसायिक दोनों ही धाराएँ होनी चाहिए, इसलिए प्रयासों में मितव्ययिता और व्यापक स्तर पर पाठ्यक्रम कार्यक्रमों की उपलब्धता के मुद्दे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन समस्याओं से योजनाबद्ध और तर्कसंगत ढंग से निपटने के लिए, निम्नलिखित सुझाव प्रस्तावित किए गए थे:

- तीसरे शैक्षणिक सर्वेक्षण (1973) की सामग्री (डेटा), जो उस समय उपलब्ध था, का उपयोग उच्चतर माध्यमिक चरण के पुनर्गठन में आने वाली चुनौतियों की प्रकृति और मात्रा को समझने के लिए किया जा सकता है ताकि इसमें व्यवसायीकरण का घटक प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया जा सके।
- इस प्रकार लिए जाने वाले तर्कसंगत निर्णयों को पाँचवीं और छठी योजना अवधि में फैलाकर धीरे-धीरे लागू किया जा सकता है। दस्तावेज़ इन योजना अवधियों में प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित करता है।
    - पांचवीं योजना अवधि में, प्रत्येक जिले में कम से कम तीन से चार स्कूलों को प्रासंगिक व्यावसायिक शिक्षा के लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
- छठी योजना अवधि में, व्यावहारिक रूप से सम्पूर्ण +2 खण्ड का व्यवसायीकरण करते हुए, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अकादमिक पाठ्यक्रमों जितने छात्रों को शामिल करने का लक्ष्य था।

- विद्यालयों द्वारा 10 वर्ष से 12 वर्ष के लिए उन्नयन का निर्णय 'बाहरी' कारकों पर आधारित होना चाहिए जैसे कि व्यवसाय का महत्त्व और इन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को उपलब्ध कराने के लिए विद्यालय के स्थान की उपयुक्तता और 'आन्तरिक' कारक जैसे विभिन्न धाराओं में छात्रों की संख्या, कक्षाओं, कामगारों, स्टाफ, आदि की आवश्यकता। इस प्रकार लागत और व्यवहार्यता सम्बन्धी कारक महत्त्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु बन जाएँगे।

प्रवेश और धारा का निर्धारण

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और इसके व्यवसायीकरण में व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं पर सन्तुलित रूप से विचार करने पर जोर दिया जाता है, जिसका उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में प्रवेश बिन्दु पर तर्कसंगत निर्णय लेने के लिए उपयुक्त प्रणालीगत व्यवस्थाएँ विकसित करने की खातिर सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जा सके। इसका निर्णय निम्नलिखित आधार पर लिया जाएगा:

- एक छात्र की क्षमता, अभिरुचियाँ और आकांक्षाएँ
- विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं में प्रतिबिंबित समाज की आवश्यकताएँ, जहाँ छात्रों को शैक्षणिक गतिविधियों के बाद कार्य का अवसर उपलब्ध हो सके, और
- सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की अनिवार्यता और शिक्षा के क्षेत्र में परम्परागत रूप से बाधित रहे लोगों के लिए अवसर की समानता।

इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि एक उम्मीदवार का प्रवेश अध्ययन के किसी चयनित कार्यक्रम के लिए होगा। इसलिए, वह अस्थाई रूप से अकादमिक या व्यावसायिक धारा में शामिल हो सकता है। पहले सेमेस्टर के अन्त में, छात्र शैक्षणिक से व्यावसायिक, या इसके विपरीत क्रम में धारा बदलने के लिए अपने विकल्प का प्रयोग कर सकता है। हालाँकि, इस स्तर पर, एक छात्र को किसी धारा में भेजने का अन्तिम निर्णय, प्रासंगिक स्थितियों को देखते हुए लिया जाना चाहिए। धाराओं में इस स्थिरीकरण के लिए मुख्य कारण यह है कि छात्र को, कम से कम पाठ्यक्रम के मध्य में, उसके द्वारा किए जा रहे अध्ययन की दिशा की स्पष्ट समझ होनी चाहिए।

एक धारा से दूसरी धारा में बदलाव की अनुमति देने वाले इस लचीलेपन का अर्थ होगा कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय को दोनों बिन्दुओं पर, प्रवेश के समय और पहले सेमेस्टर के अन्त में, करियर और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में छात्र को मार्गदर्शन और परामर्श प्रदान करना होगा। यह भूमिका निभाने के लिए शिक्षकों का उपयुक्त उन्मुखीकरण और प्रशिक्षण करना होगा।

व्यवसायों का विकल्प: जिला और राज्य परिषदों की संस्थागत संरचनाओं के रूप में कल्पना

किसी दिए गए क्षेत्र में प्रासंगिक व्यवसायों की पहचान, और व्यवसायीकृत उच्चतर माध्यमिक शैक्षणिक प्रणाली में इनकी उपलब्धता की व्यवस्था करने का प्रावधान, अकादमिक और परिचालन दोनों दृष्टियों से कठिन चुनौतियाँ पैदा करेगा। इस लक्ष्य की दिशा में, दस्तावेज़ निम्नलिखित सुझाव देता है।

I. एक व्यवसाय की प्रासंगिकता पर विचार करने के लिए एक जिला या जिलों का समूह एक इकाई होना चाहिए।

II. प्रासंगिक व्यवसाय की पहचान के लिए दो मुख्य स्रोत हैं :

   अ) जिला स्तर पर विकास और भावी व्यवसायों की तत्काल सम्भावना के लिए राज्य योजना के प्रस्ताव।

   आ) आर्थिक और सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मौजूदा गतिविधियों पर आधारित व्यवसाय।

इस उद्देश्य के लिए जिला स्तर पर अत्याधुनिक व्यवसायीकृत शिक्षा की सम्भावनाएँ खोजने के लिए व्यवस्थित सर्वेक्षण आयोजित करना आवश्यक हो सकता है।

- व्यावसायिक शिक्षा के केन्द्र बनने योग्य संस्थानों में वे शामिल हैं जो पहले से ही कई स्थानों पर मौजूद हैं, उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य और कृषि विद्यालय, पॉलिटेक्निक, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान और औद्योगिक या अन्य केन्द्र, जहाँ प्रशिक्षुओं के लिए प्रशिक्षण सुविधाएँ मौजूद हैं। ऐसे संस्थान अलग-अलग विभागों, सार्वजनिक उद्यमों और निजी संगठनों के रूप में पाए जाते हैं। शासन द्वारा उचित कानून के माध्यम से इन संस्थानों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने में शामिल करने पर विचार किया जाना चाहिए।
- उपयुक्त सर्वेक्षण करने, व्यावसायिक अवसरों का पता लगाने, जिला स्तर पर लघुस्तरीय योजनाएँ बनाने, और जनशक्ति की आवश्यकताओं का आकलन करने के लिए, निम्नलिखित संस्थागत संरचनाओं की अनुशंसा की गई थी:
   - व्यावसायिक अध्ययन के लिए राज्य द्वारा जिला-स्तरीय समितियाँ गठित की जानी चाहिए।

- एक राज्य-स्तरीय बोर्ड या काउंसिल का गठन किया जाना चाहिए, जो राज्य में सभी प्रतिष्ठानों में सुविधाओं के उपयोग के समन्वय सहित अनेक कार्य करेगा।

यह पूर्व में सीएबीई द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार था।

I. ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाएँ और सेवाएँ आमतौर पर उपेक्षित रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप शहर के प्रशिक्षित डॉक्टर, इंजीनियर और तकनीशियन भी ग्रामीण क्षेत्रों में बसने और सेवा प्रदान करने के प्रति पर्याप्त आकर्षण महसूस नहीं करते हैं। इसलिए, उन व्यवसायों को विकसित करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनमें कृषि संसाधनों के बेहतर उपयोग की सम्भावना हो। इस प्रकार आयोजित व्यावसायिक शिक्षा में आर्थिक विकास के लाभ के न्यायपूर्ण वितरण और सामाजिक न्याय की दिशा में प्रयासों की सम्भावना होगी।

अकादमिक और व्यावसायिक धाराओं के पाठ्यक्रमों का स्वरूप

व्यावसायिक शिक्षा और अकादमिक शिक्षा की मूल रूपरेखा के साथ, निम्नलिखित स्वरूप और समय के विभाजन का सुझाव दिया गया है :

अ.	भाषा, सामान्य अध्ययन (सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, आदि)	दोनों धाराओं के लिए 25% समय
ब.	विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और मानविकी, साहित्य सहित	अकादमिक धारा के लिए 75% समय। छात्र 'स' से भी पाठ्यचर्या चुन सकते हैं
स.	विभिन्न व्यवसायों के आधार और सम्भावना को समझाने के लिए डिज़ाइन किए गए विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और मानविकी पाठ्यक्रम	व्यावसायिक धारा का 25% समय
द.	व्यावसायिक और प्रायोगिक कार्य	व्यावसायिक धारा का 50% समय

दस्तावेज़ में प्रस्तुत विस्तृत योजना में प्रासंगिक दृष्टान्त और दिशानिर्देश शामिल हैं।[10] अध्ययन के संयोजन और छात्रों के अधिगम के मूल्यांकन के सम्बन्ध में अधिक विशिष्ट कार्यात्मक विवरण दो व्याख्यात्मक परिशिष्टों में दिए गए हैं।[11]

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यवसायीकृत शिक्षा : एक समीक्षा

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और इसके व्यवसायीकरण के तहत अनुशंसित पाठ्यचर्या योजना ने कई संगठनात्मक समस्याओं को उभारा। ये मुख्य रूप से दो साल के पूर्णकालिक उच्चतर माध्यमिक स्तर के संगठन से जुड़ी थी, जिसमें दो धाराओं के होने की अपेक्षा की गई थी - अकादमिक और

व्यावसायिक। इन मुद्दों के परीक्षण के लिए 1978 में एम. आदिशेषैया की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति गठित की गई। समीक्षा समिति ने निम्नलिखित पाठ्यचर्या संरचना और अन्य सम्बद्ध अनुशंसाओं का सुझाव दिया।

	धाराएँ	**समय आवंटन**
1.	**(i) सामान्य**	
•	भाषा	15%
•	सामाजिक दृष्टि से उपयोगी उत्पादक कार्य (एसयूपीडब्ल्यू)	15%
•	मानविकी और प्राकृतिक विज्ञान से तीन ऐच्छिक विकल्प	70%
(ii) व्यावसायिक		
•	भाषा	15%
•	एक सामान्य आधार पाठ्यक्रम	15%
•	ऐच्छिक व्यावसायिक विकल्प	70%

इसका आधा प्रायोगिक कार्य में लगाया जाना है

2. दोनों धाराओं के बीच अनेक सेतु बिन्दुओं (crossover points) के साथ लचीलापन होना चाहिए। इस सेतु को सुगम बनाने के लिए सेतु पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
3. उपलब्ध कराए जाने वाले व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को क्षेत्र में उपलब्ध रोजगार या स्वरोजगार के अवसरों से निकटता से सम्बन्धित होना चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सावधानीपूर्वक नियोजित स्थानीय सर्वेक्षण कराए जाने चाहिए।
4. व्यावसायिक धारा के लिए भौतिक स्थान और सुविधाएँ, प्रशिक्षित शिक्षक, पाठ्यपुस्तक आदि उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।
5. सरकार की भर्ती नीतियों के तहत ऊर्ध्वगामी गतिशीलता के लिए बेहतर अवसरों की उपलब्धता और इन पाठ्यक्रमों के स्नातकों को दी जाने वाली वरीयता पर जोर देते हुए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए।

समीक्षा समिति यानी ईश्वरभाई पटेल समिति (1977) और मैल्कम आदिशेषैया समिति (1978) ने वास्तविक और संगठनात्मक दोनों प्रकार की समस्याओं का परीक्षण किया। शिक्षा के आवश्यक तत्वों के रूप में कार्य अनुभव और व्यावसायिकता के उद्भव से पहले की अवधि के दौरान हासिल

की जानी वाली शिक्षा के सन्दर्भ में इन समस्याओं को समझे और विवेचित किए जाने की जरूरत है। शिक्षा के प्रति पारम्परिक दृष्टिकोण की ऐसी पृष्ठभूमि में – विशेष रूप से औपचारिक व्यवस्थाओं/विद्यालयों में – शिक्षा के एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में व्यवसायीकरण का सामंजस्य शिक्षा के प्रति स्वतंत्र भारत के उभरते हुए दृष्टिकोण के मुकाबले में शैक्षणिक विकास की एक नई दृष्टि के साथ बिठाया जाना था।

यह चार प्रमुख कवायदें - दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, और इसकी व्यावसायिकता (1975 और 1976) के साथ-साथ समीक्षा समितियों की दो रिपोर्टों (1977 और 1978) - 1970 के पूरे दशक में चलती रही। इसके अलावा, ये दस्तावेज़, उनकी शुरुआत से समीक्षाओं में उनकी परिणति तक, 1970 के दशक में शिक्षा के सभी चरणों में शिक्षा पर विमर्श के केन्द्र में बने रहे। इस अर्थ में, 1970 का दशक एक मील के पत्थर के रूप में उभरा, जो शैक्षिक पुनर्निर्माण के वैचारिक और संगठनात्मक पहलुओं से जुड़ी आवश्यकताओं और समस्याओं को स्पष्ट रूप से सतह पर ले आया, जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 में विद्यालय स्तर पर सामान्य रूप से और व्यवसायीकरण को लेकर विशेष रूप से परिकल्पना की गई थी।

3. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा

पृष्ठभूमि

दस-वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यचर्या को धीरे-धीरे सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा स्वीकार कर लिया गया। हालाँकि, इसका कार्यान्वयन असमान रहा। इसके साथ-साथ, शिक्षा के पुनर्निर्माण से सम्बन्धित अन्य मुद्दे, जैसे विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता सुधारने से सम्बन्धित सुधारों की आवश्यकता, 1980 के दशक में गम्भीर चुनौतियों के रूप में उभरे, जिन पर प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफईएसई) - 1988 के जरिए बात की गई।

1983 में, एनसीईआरटी ने पाठ्यचर्या भार की समस्या का विस्तृत अध्ययन करने और राज्यों में निर्धारित पाठ्यचर्या का एक गहन विश्लेषण करने के लिए एक कार्यदल का गठन किया। कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और राजस्थान में यह अध्ययन किया गया। अध्ययन की रिपोर्ट ने निष्कर्ष निकला कि :

> बोझ की समस्या उतनी पाठ्यचर्या के विकास को लेकर नहीं थी, जितनी कि संसाधन की कमी के चलते बोध और प्रबन्धन को लेकर थी। आवश्यक भौतिक सुविधाओं और शैक्षणिक निविष्टियों (इनपुट्स) की कमी, पेडॅगोजि सम्बन्धी नवाचारों का अभाव, शिक्षण सामग्री की खराब गुणवत्ता, शिक्षकों की अपर्याप्त तैयारी और उन्मुखीकरण, और सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली का दबदबा जैसे कारण छात्रों को सीखने के आनन्द से वंचित करने के लिए जिम्मेदार थे।[12]

1980 के दशक के मध्य में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 का जारी किया जाना एक और महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम था। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निम्नलिखित सूत्रीकरण शामिल थे, जो विद्यालयीन पाठ्यचर्या और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा और इसकी भूमिका से सम्बन्धित मामलों को स्पष्ट करने का कोशिश करते हैं।

1. एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की अवधारणा में अन्तर्निहित है कि एक निर्धारित स्तर तक जाति, पंथ, स्थान या लिंग का विचार किए बिना सभी छात्रों की तुलनीय गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुँच हो।
2. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा पर आधारित होगी जिसमें एक सामान्य अन्तर्भाग के साथ-साथ अन्य घटक होंगे जो लचीले होंगे।

3. सभी शैक्षिक कार्यक्रमों का संचालन सख्ती से धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के अनुरूप किया जाएगा।
4. बुनियादी पाठ्यचर्या के जरिए सब की अन्तर्निहित समानता के बारे में जागरूकता पैदा की जाएगी। इसका उद्देश्य सामाजिक वातावरण और जन्म के संयोग के माध्यम से प्रसारित सभी पूर्वाग्रहों और मनोग्रन्थियों को हटाना है।
5. युवाओं को अपनी छवि और अपनी धारणा के अनुसार, भारत की पुनर्खोज करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।
6. आज विकास का एक महत्वपूर्ण मुद्दा कौशलों के निरन्तर उन्नयन का है ताकि समाज के लिए जितने और जिस प्रकार के जनशक्ति संसाधन आवश्यक हैं उन्हें तैयार किया जा सके।
7. परिवर्तन-उन्मुखी प्रौद्योगिकियों और देश की सांस्कृतिक परम्परा की निरन्तरता के बीच शिक्षा एक अच्छा संश्लेषण सम्भव कर सकती है और उसे ऐसा करना ही चाहिए। पाठ्यचर्या और शिक्षा की प्रक्रियाएँ सांस्कृतिक विषय वस्तु के अधिक से अधिक स्वरूपों की अभिव्यक्तियों से समृद्ध होंगी।
8. हमारे सांस्कृतिक रूप से बहुलतावादी समाज में, शिक्षा द्वारा सार्वभौमिक और शाश्वत मूल्यों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जो हमारे लोगों की एकता और अखण्डता की ओर उन्मुख हों। इस तरह की मूल्य आधारित शिक्षा से रूढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, अन्धविश्वास और भाग्यवाद के उन्मूलन में सहायता मिलनी चाहिए।

1975 के बाद से राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 तक के घटनाक्रम (ऊपर जिनकी चर्चा की गई है) ने शिक्षा के विभिन्न चरणों के लिए एक अधिक व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करने के लिए 1988 में हाथ में लिए गए कार्य के लिए एक पृष्ठभूमि की भूमिका निभाई। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करने का कार्य एनसीईआरटी द्वारा एक आन्तरिक कवायद के रूप में शुरू किया गया था। इस उद्देश्य से, 1984 में एक संचालन समूह का गठन किया गया था। इसने पाठ्यचर्या सम्बन्धित सरोकारों और मुद्दों की पहचान की, जिन पर 1985 में आयोजित एक राष्ट्रीय सेमिनार और चार क्षेत्रीय सेमिनारों में विचार-विमर्श किया गया। इन सेमिनारों के सहभागियों में प्रख्यात शिक्षाविद्, पाठ्यचर्या विशेषज्ञ, विषय विशेषज्ञ, विद्यालयीन प्राचार्य, शिक्षक, अध्यापक शिक्षक, विधायक, संसद सदस्य, पत्रकार और शिक्षक संगठनों के प्रतिनिधि शामिल थे। इसके अलावा, बड़ी संख्या में शिक्षकों, छात्रों और अभिभावकों

के साथ अलग से परामर्श किया गया। प्राप्त सुझावों पर एनसीएफईएसई-1988 का मसौदा तैयार करते समय विचार किया गया। इस मसौदे पर राष्ट्रीय बैठक में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों द्वारा आगे चर्चा की गई। प्राप्त सुझावों का उपयोग मसौदे में और संशोधन करने के लिए किया गया। इस बीच, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 जारी की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के मुख्य विषय और अनुशंसाओं को शामिल करने के लिए मसौदा पाठ्यचर्या रूपरेखा को संशोधित करना अति-आवश्यक माना गया। इस प्रकार, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-1988 तैयार करने की पूरी कवायद को, जो एनसीईआरटी द्वारा एक आन्तरिक कवायद के रूप में आरम्भ की गई थी, अब एक परियोजना में तब्दील कर दिया गया था, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 और कार्य योजना-1986 में रेखांकित की गई पाठ्यचर्या सम्बन्धी चिन्ताओं और कार्यक्रमों के सर्वथा अनुकूल मसौदा पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करना था।

विद्यालयीन शिक्षा पाठ्यचर्या तैयार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 से उभरे बुनियादी मापदण्ड

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में स्पष्ट रूप से वर्णित बातों से निम्नलिखित तीन प्रमुख विचार उभरे, जो विद्यालयीन शिक्षा की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के माध्यम से पाठ्यचर्या निवेश (इनपुट्स) और उनके कार्यान्वयन के लिए निहित पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के निर्धारण के लिए आवश्यक हैं।

शिक्षा के जरिए विकास के सामान्य दर्शन के निर्धारक के रूप में स्वतंत्रता संग्राम की रीति-नीति

स्वतंत्रता संग्राम में विभिन्न धर्मों, जातियों, पंथों, भाषाओं, क्षेत्रों, आर्थिक स्थिति और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों ने भाग लिया, जो लगभग सौ वर्षों तक जारी रहा। इस अवधि में, राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय पहचान सबसे आगे रही। स्वतंत्रता संग्राम से उत्पन्न हुई रीति-नीति को भारत के लोगों द्वारा मिलजुल कर साझा किया गया। सम्पूर्ण आन्दोलन इस ‘लोकाचार’ द्वारा निर्देशित था; जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और अन्य कारकों के आधार पर किसी तबके की गुटबन्दी कोई मायने नहीं रखती थी। स्वतंत्रता प्राप्त करना एकमात्र लक्ष्य था जिसके साथ कोई समझौता सम्भव नहीं था।

स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के बाद भी, देश की राष्ट्रीय भावना और भविष्य निर्माण के लिए यह लोकाचार स्वतंत्र भारत, एक नए भारत, और एक विकसित भारत की परिकल्पना को मार्गदर्शन प्रदान करता रहा। यही लोकाचार भारत के संविधान (1950) में व्यापक रूप से प्रतिबिंबित होता

है, जो भारत को एक सम्प्रभु राष्ट्र-राज्य - धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतांत्रिक के रूप में वर्णित करता है।[13]

शिक्षा के एक लक्ष्य के रूप में सर्वांगीण विकास

किसी व्यक्ति का सर्वांगीण विकास शिक्षा और उसकी पाठ्यचर्या सम्बन्धी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में मुख्य रूप से दो तरह से देखा जा सकता है।

एक, किसी व्यक्ति की अद्‌वितीय शक्यता या सम्भावनाओं को देखते हुए, और इस शक्यता को साकार करने और सिद्‌ध करने के लिए उसके झुकाव को देखते हुए, शिक्षा के माध्यम से उपयुक्त अधिगम अनुभव के अवसर प्रदान कराए जाने चाहिए। शिक्षा का प्रारम्भिक चरण सामान्य शिक्षा का चरण है, जो बच्चे को उसके पर्यावरण, प्राकृतिक और सामाजिक दोनों, के बारे में व्यापक जागरूकता हासिल करने में सक्षम बनाता है। बाद के स्तर पर, शिक्षार्थी विभिन्न पाठ्यचर्या क्षेत्रों से सम्बन्धित अधिक विशिष्ट सामर्थ्य और अन्य योग्यतायों को अधिक विशिष्ट तरीके से प्राप्त करता है। यह विशिष्ट या कौशलपूर्ण शिक्षण शिक्षार्थी को कार्य स्थितियों में भाग लेने में सक्षम बनाता है और इस तरह वह विकास प्रक्रिया - आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक- में योगदान देता है।

दो, सामान्य अर्थ में शिक्षा की एक प्रमुख भूमिका प्रौद्‌योगिकी-उन्मुख परिवर्तनों के समन्वयन को हासिल करने और अतीत और वर्तमान के बीच निरन्तरता बनाए रखने के लिए भी है।

स्वयं की खोज और सांस्कृतिक बहुलता का संवर्धन

भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति दो स्तम्भों पर टिकी हुई है : (i) एक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, और (ii) एक स्वतंत्र राष्ट्र की परिकल्पना। इसलिए, लक्ष्य यह है कि देश की प्राचीन संस्कृति में जो कुछ लाभप्रद माना गया उसे सुरक्षित रखा जाए और नए तत्वों को स्वीकार किया जाए जो देश की इस परिकल्पना को साकार रूप देने की दिशा में आगे ले जाएँ।

इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि इस परिकल्पना का अर्थ है शिक्षा प्रदान करने और पाठ्यचर्या सम्बन्धी निवेशों को व्यवस्थित करने की आवश्यकता को पहचानना, ताकि शिक्षा की उपयुक्त प्रक्रियाएँ बनाई और अपनाई जा सकें। किसी एक ही दर्शन या विचार पद्‌धति पर पूरी तरह से निर्भर होकर इसे प्राप्त करना कठिन है। शिक्षा के सम्बन्ध में हमारे सरोकार अपनी प्रकृति में बहु-परिप्रेक्ष्य-धर्मी हैं, क्योंकि वे शैक्षिक कार्यों, कार्यक्रमों और कार्यान्वयनों से सम्बन्धित हैं।

इसलिए विभिन्न विचारों, कौशलों और योग्यताओं को संश्लेषित करने के तरीकों और साधनों की खोज करना आवश्यक है। यह सर्वश्रेष्ठ ढंग से स्वयं अभ्यासी यानी शिक्षक द्वारा किया जा सकता है। और यहाँ उचित और प्रभावी शिक्षण प्रक्रियाएँ निर्मित करने और लागू करने की वास्तविक चुनौती सामने आती है।

यह शिक्षक और शिक्षार्थी को शिक्षण प्रक्रिया के मूल मंच पर ले आता है। शिक्षक पाठयक्रम निवेश के चयन और संयोजन में हिस्सेदारी करता है और सांस्कृतिक बहुलता के सिद्धान्त के अनुसार शिक्षार्थी द्वारा इनके अधिगम को सुगम बनाता है। अपनी तरफ से शिक्षार्थी विषय-सम्बन्धित ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है, सामाजिक पर्यावरण के बारे में आवश्यक जागरूकता विकसित करता है, और इस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और वरीयताओं के लिए उनकी प्रासंगिकता को समझता है। इस प्रक्रिया में, शिक्षार्थी अपने आस-पास के प्राकृतिक और सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरण के प्रति अपनी बोधात्मक जागरूकता का संश्लेषण करता है, और इस जागरूकता को अपनी समग्र समझ के साथ एकीकृत करता है। इस प्रकार, वह अपने अनूठे तरीके से एक सांस्कृतिक लोकाचार की खोज करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से शिक्षार्थी भारत और इसकी विविधतापूर्ण संस्कृति को पुनः खोजता है, जिसमें उसका अपना दृष्टिकोण सामासिक (composite) संस्कृति में एक अलग लेकिन एकीकृत अस्मिता रखता है। इसी तरह, मौलिक ज्ञान और कौशल प्राकृतिक वातावरण को समझने के लिए एक आधार प्रदान करते हैं। इसे शिक्षार्थी द्वारा एक प्रयोगोन्मुखी ढंग से भी देखा जा सकता है, जो उसे समझने की प्रक्रिया के संश्लेषण की दिशा में ले जाता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा से सम्बन्धित अधिगम

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की अवधारणा पाठ्यचर्या की तुलना में बहुत व्यापक है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की अवधारणा पाठयक्रम की विशेषताओं को तो उल्लिखित करती ही है, साथ में यह अन्य पहलुओं जैसे कार्यान्वयन-सम्बन्धित प्रणालीगत व्यवस्थाओं और छात्र के किसी विषय के ज्ञान को सामाजिक ज्ञान के बृहत क्षेत्र के साथ जोड़ने के तरीकों को भी निर्दिष्ट करती है। इसके संचालन के साथ निम्नलिखित दो चीजें विद्यालयीन शिक्षा के माध्यम से होती हैं।

- एक, पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के माध्यम से छात्र द्वारा प्राप्त की गई विशिष्ट सीख सामाजिक सीख में बदल जाती है, जिसे चुना और पसन्द किया जाता है। इस प्रकार,

विषय-केन्द्रित सीखना शैक्षिक प्रक्रिया का एक भाग बन जाता है, और शिक्षण प्रक्रिया द्वारा इसे विधिवत संशोधित और अपने में अवशोषित कर लिया जाता है।

- दो, पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया को जब छात्रों के सीखने को शक्ल देने के इन चरणों के साथ देखा जाता है तो वह शिक्षण प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन जाती है। इस प्रकार, पेडॅगोजि और शिक्षा के बीच का अन्तर धुँधला हो जाता है। इस व्यापक प्रक्रिया में, छात्र लगातार
    - सीखता और स्वयं को समृद्ध बनाता है
    - जो बातें सामाजिक विकास की परिकल्पना से मेल नहीं खाती उन्हें भुलाता है
    - कुछ दूसरी चीजों को फिर सीखता है, जो पुनर्व्याख्या के जरिए प्रासंगिकता हासिल करती हैं; इस प्रकार कुछ मौजूदा या प्राचीन विचार तक सीखने के लिए नए सिरे से महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं।

इस प्रक्रिया के माध्यम से शिक्षा समय के साथ विकसित होती है। इसके अलावा, एक प्रमुख अंशदायी प्रक्रिया के रूप में पेडॅगोजि निरन्तर आगे बढ़ता है और शिक्षार्थियों को शिक्षित करने से सम्बन्धित उभरते सरोकारों का जवाब देने के लिए अवधारणात्मक और सैद्धान्तिक रूप से खुद को गहरा बनाता है।

अध्ययन की योजना

अध्ययन की एक सामान्य योजना एनसीएफईएसई-1988 की विशेषता है, जिसका संक्षिप्त उल्लेख निम्नानुसार है।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (दो साल)

इस स्तर पर बच्चों में पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता और अन्य विकासात्मक आयामों को प्रोत्साहित करने के लिए, निम्नलिखित गतिविधियाँ आयोजित की जानी चाहिए।

- सामूहिक गतिविधियाँ और गतिविधि-आधारित तकनीकें
- भाषा सम्बन्धी खेल
- अंक सम्बन्धी खेल
- पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाने के लिए गतिविधियाँ

  इस स्तर पर कोई औपचारिक शिक्षण नहीं किया जाना है।

प्राथमिक शिक्षा (8 साल)

प्राथमिक स्तर (5 साल)

(i) एक भाषा : मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ii) गणित

(iii) पर्यावरण अध्ययन I और II

(iv) कार्य अनुभव

(v) कला शिक्षा

(vi) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

उच्च प्राथमिक स्तर (3 वर्ष)

(i) तीन भाषाएँ

(ii) गणित

(iii) विज्ञान

(iv) सामाजिक विज्ञान

(v) कार्य अनुभव

(vi) कला शिक्षा

(vii) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

माध्यमिक स्तर (2 वर्ष)

(i) तीन भाषाएँ

(ii) गणित

(iii) विज्ञान

(iv) सामाजिक विज्ञान

(v) कार्य अनुभव

(vi) कला शिक्षा

(vii) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

अन्य प्रणालीगत विचार

एनसीएफईएसई-1988 अध्ययन की सामान्य पाठ्यचर्या योजना की निम्नलिखित विशेषताओं को रेखांकित करता है।

- प्रत्येक चरण के लिए 'अधिगम के न्यूनतम स्तर' स्थापित करके पूरे देश में शिक्षा के मानक सुनिश्चित किए जाने चाहिए।
- अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों को शिक्षकों को इस तरह से तैयार करने के लिए उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाना चाहिए कि वे छात्रों में शिक्षा में 'सामाजिक सोद्देश्यता' से सम्बन्धित धारणाओं और मूल्यों की समझ विकसित करने में उनकी मदद के लिए प्रभावी रूप से विषय क्षेत्रों की पाठ्यसामग्री का उपयोग कर सकें। इससे प्रस्तावित पाठ्यचर्या और 'छिपी हुई पाठ्यचर्या' के बीच विसंगतियाँ कम होनी चाहिए, जो शिक्षकों की मान्यताओं और धारणाओं के कारण हो सकती हैं।
- परीक्षा प्रणाली को 'अधिगम-मूल्यांकन' की एकीकृत प्रकृति के सिद्धान्तों के अनुसार संशोधित किया जाना चाहिए।
- राज्य, जिला, और उप-जिला स्तरों पर संरचनात्मक सहायता प्रणाली को व्यावसायिक आधार पर मजबूत बनाया जाना चाहिए ताकि राष्ट्रीय स्कूल शिक्षा प्रणाली के सभी चरणों में पाठ्यचर्या के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए व्यवस्थागत सहायता और क्षमता-निर्माण कार्यक्रम सुनिश्चित किए जा सकें।

  राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के तहत एनसीएफईएसई-1988 के निर्माण और कार्यान्वयन के लिए एनसीईआरटी को प्रमुख जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

4. विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा

पृष्ठभूमि

1990 के दशक की शुरुआत में, देश में शिक्षा पर विमर्श में शिक्षा की गुणवत्ता के बारे में, विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा के स्तर के बारे में, चिन्ताएँ प्रमुखता से उभर कर सामने आईं।

- मार्च 1990 में जोम्टीन, थाईलैण्ड में आयोजित सबके लिए शिक्षा (ईएफए) पर विश्व सम्मेलन ने सभी सदस्य राष्ट्रों और अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों से वर्ष 2000 तक सब के लिए शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रभावी कदम उठाने के लिए अपील करते हुए एक घोषणा-पत्र अपनाया। सीएबीई ने 1991 और 1992 में अपनी बैठकों में सबके लिए शिक्षा की वैश्विक घोषणा को मान्यता दी और इसे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में प्राथमिक शिक्षा के लिए दी गई नीतिगत दिशा की पुन: पुष्टि माना। इसके अलावा, सीएबीई ने इस बात पर जोर दिया कि बाहरी सहायता के माध्यम से उपलब्ध अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग शैक्षिक सुधार के लिए किया जाना चाहिए, जो नए विद्यालय शुरू करने, विद्यालय भवनों का निर्माण और शिक्षकों की नियुक्ति जैसे पारम्परिक उपायों से परे होना चाहिए। 1990 के दशक में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) और लोक जुंबिश जैसी परियोजनाओं ने गुणवत्ता की चिन्ताओं के समाधान पर विशेष ध्यान दिया।
- साथ ही, 1992 में, भारत सरकार ने सीखने की गुणवत्ता में सुधार, आजीवन स्वाध्याय और कौशल विकास की क्षमता बढ़ाने के साथ-साथ सभी स्तरों पर विद्यालयीन छात्रों, विशेष रूप से कम उम्र के छात्रों पर भार कम करने के तरीकों और उपायों पर सलाह देने के लिए प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन किया।[14]
    - राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने कहा कि हानिकारक बोझ स्कूल बैग का नहीं बल्कि छात्रों की ओर से समझने की कमी का है। उन्हें समझ नहीं आता कि उन्हें क्या पढ़ाया जा रहा है और न ही वे उस गतिविधि को समझते हैं जिसमें वे संलग्न हैं। इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि दैनिक विद्यालय की दिनचर्या बच्चे की जन्मजात प्रकृति और क्षमता को अभिव्यक्ति के लिए किसी भी अवसर की अनुमति

नहीं देती है; दैनिक दिनचर्या बच्चे को खेलने के समय, साधारण सुखों का आनन्द लेने और उसके आस-पास की दुनिया की छानबीन करने की अनुमति नहीं देती है।

- आनन्दविहीन अधिगम का एक और कारण यह है कि अक्सर भ्रमवश जानकारी को ज्ञान समझ लिया जाता है। इसी तरह, समझने का अर्थ तथ्यों का अधिग्रहण मान लिया जाता है। इस तरह के भ्रम के कारण शिक्षा के 'समझने' के उद्देश्य की उपेक्षा होती है।
- इसके अलावा, राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने विभिन्न स्थितियों और शिक्षकों के अनुभवों का हवाला दिया, सर्वेक्षणों के उदाहरणों द्वारा जिनकी पुष्टि होती थी, जिसमें दिखाया गया कि कैसे परीक्षा प्रणाली, पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम विकास में शिक्षकों की भागीदारी की कमी, अकादमिक प्रबन्धन की केन्द्रीकृत प्रणाली आदि उपरोक्त स्थिति के निर्माण में योगदान करते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ एक प्रतिस्पर्धा-आधारित लोकाचार प्रस्तुत करती हैं; यहाँ अकादमिक लोकाचार का अभाव स्पष्ट रूप से ध्यान देने योग्य है।

- राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट 1993 में प्रस्तुत की गई थी। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इस रिपोर्ट को स्वीकार किया और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अतिरिक्त सचिव श्री वाय.एन. चतुर्वेदी की अध्यक्षता में एक कार्यकारी दल का गठन किया।
- कार्यकारी दल को राष्ट्रीय सलाहकार समिति की अनुशंसाओं का परीक्षण करने, उन्हें लागू करने की व्यवहार्यता पर अपने विचार देने और उनके कार्यान्वयन के लिए एक समय-सारणी तैयार करने के लिए कहा गया था। कार्यकारी दल ने रिपोर्ट में किए गए कुछ दावों के बारे में कुछ सन्देह व्यक्त किए, जैसा कि निम्नलिखित टिप्पणियाँ दर्शाती हैं।

जबकि समिति की रिपोर्ट का आधार तैयार करने वाला मुख्य तर्क सर्वथा सही है, इसकी अनुशंसाओं के मुख्य विषय के सम्बन्ध में, रिपोर्ट में दिए गए कुछ कथन उस डैटा या आधार को इंगित नहीं करते हैं जिस पर समिति निर्भर रही है।[15]

इसने कुछ अनुशंसाओं को लागू करने की व्यवहार्यता के बारे में भी सन्देह व्यक्त किया। राष्ट्रीय सलाहकार समिति की अनुशंसाओं में से एक निम्नलिखित है।

बच्चों के अधिगम की गुणवत्ता सुधारने और रट कर याद करने के उत्पीड़न से उन्हें बचाने के लिए एकल सुधार पर्याप्त है।[16]

लेकिन कार्यकारी दल ने निम्नलिखित शब्दों में इसे खारिज कर दिया।

> ... अवधारणा आधारित प्रश्न पूछने का सन्दर्भ शायद उच्च क्षमता के प्रश्नों को अधिक महत्त्व देने की वकालत करता है। दल इससे सहमत है लेकिन यह याद रखा जाना चाहिए कि मूल्यांकन में विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का परीक्षण होना चाहिए न कि सिर्फ एक तरह की क्षमता का।[17]

दोनों दस्तावेज़ - राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट और कार्यकारी दल की रिपोर्ट - राज्यों को एक साथ भेजे गए थे। कार्यकारी दल द्वारा व्यक्त किए गए अकादमिक विचारों, जो अनुमोदन से कम ही थे, ने उन लोगों के उत्साह को विशेष रूप से कम कर दिया जो राज्यों में राष्ट्रीय सलाहकार समिति की अनुशंसाओं को लागू करने वाले थे। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय सलाहकार समिति द्वारा की गई अनुशंसाओं को लागू करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया।

1990 के दशक के उत्तरार्ध में, शिक्षा में ध्यान पाठ्यचर्या में ज्ञान और अधिगम के देशज पहलुओं को शामिल करने और मूल्य-आधारित शिक्षा को बढ़ावा देने की आवश्यकता जैसे सरोकारों की ओर चला गया। केन्द्र शासन द्वारा प्रायोजित और राष्ट्रीय संस्थानों की पहल पर शिक्षा पर शुरू किए गए विमर्श में ये सरोकार प्रतिबिंबित हुए। परिणामस्वरूप, एनसीईआरटी ने सभी चरणों में विद्यालयीन पाठ्यचर्या की समीक्षा करने और उसे संशोधित करने की पहल की। इस कवायद का परिणाम विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 के रूप में सामने आया।

जैसा कि पहले बताया गया है, विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या से सम्बन्धित तीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाएँ क्रमशः 1975, 1976 और 1988 में तैयार की गई हैं। जब एनसीएफईएसई-1988 मसौदे के रूप में तैयार थी, तब ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 संसद द्वारा अपनाई गई थी। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 की तुलना में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-1988 के मसौदे पर पुनर्विचार करना अनिवार्य हो गया। इस प्रकार दो प्रक्रियाएँ, यानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति और विद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या तैयार करना, वैचारिक और वास्तविक रूप से आपस में जुड़ गए।

इसलिए, जब विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 पर काम शुरू हुआ, तो दो दस्तावेजों यानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-1988 को एक-दूसरे के साथ मिलाकर देखना प्रासंगिक माना गया।

एनसीएफएसई-2000 के बुनियादी मापदण्ड सम्बन्धी विचार

विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 में आरम्भ में ही निम्नलिखित बिन्दु स्पष्ट रूप से व्यक्त हैं।[18]

- विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 और प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा-1988 में उठाए गए कुछ प्रमुख सरोकारों की पुष्टि करती है, यानी भाषा शिक्षा; शिक्षा का माध्यम; सभी चरणों के लिए एक सामान्य विद्यालय संरचना की आवश्यकता; और सामाजिक सामंजस्य, धर्मनिरपेक्षता, और राष्ट्रीय अखण्डता के केन्द्रीय मूल्यों, और सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया के लिए उनकी प्रासंगिकता।
- पहले की पाठ्यचर्या रूपरेखाओं में व्यक्त कुछ अन्य सरोकारों को विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 में विस्तारपूर्वक व्यक्त किया गया है। ये चिन्ताएँ मुख्य घटकों, सतत और व्यापक मूल्यांकन, स्वतंत्रता और लचीलेपन, व्यावसायिक शिक्षा आदि से सम्बन्धित हैं।
- विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 कुछ मुद्दों को एक नई नजर से देखा गया है जैसे कि अधिगम के न्यूनतम स्तर, मूल्य-आधारित शिक्षा, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग और शैक्षिक प्रणाली के प्रबन्धन और जवाबदेही से सम्बन्धित मुद्दे।
- नीति सम्बन्धी बेहतर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए कुछ अन्य सरोकारों को या तो फिर से सूत्रबद्ध किया गया है या अलग ढंग से उठाया गया है। इनमें स्वस्थ, सुखद और तनाव मुक्त शैशवावस्था देखभाल और शिक्षा, उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए प्रतिभा को संबल देना और पोषित करना, और पाठ्यचर्या भार को कम करने की आवश्यकता शामिल है।

  यहाँ यह दर्ज किया जा सकता कि वास्तविक रूप से और भाषाई स्तर पर, दोनों तरीकों से यह दावा करने के सचेत प्रयास किए गए कि विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या

रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 की सभी अनुशंसाएँ राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 की भावना के अनुरूप हैं।

अध्ययन योजना

यहाँ प्रस्तुत जानकारी विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 में दी गई अध्ययन योजना का एक संक्षिप्त रूप है।[19]

शैशवावस्था शिक्षा (2 वर्ष)

(i) सामूहिक गतिविधियाँ

- गतिविधि आधारित तकनीकें
- भाषा सम्बन्धी खेल
- अंक सम्बन्धी खेल
- समाजीकरण और पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से गतिविधियाँ

(ii) भाषा का मौखिक उपयोग

- पहचान, तुलना, मिलान, नामकरण, कहानी, चित्रकारी और गिनती से सम्बन्धित भाषा कौशलों को सुनना
- बच्चों में सामाजिक जागरूकता
    - बच्चे की बच्चे से अन्तःक्रिया
    - बच्चे की प्रकृति के साथ अन्तःक्रिया

प्राथमिक शिक्षा (8 वर्ष)

प्राथमिक स्तर (5 वर्ष)

कक्षा I और II

(i) एक भाषा - मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ii) गणित

(iii) स्वस्थ और उत्पादक जीवन जीने की कला

- पर्यावरणीय चिन्ताओं सहित प्राकृतिक और मानव निर्मित वातावरण दोनों को शामिल करने के लिए (अ) और (ब) में अनुभव और शिक्षण-अधिगम

- स्वास्थ्य से सम्बन्धित गतिविधियाँ - क्रीड़ा, खेल-कूद, आरम्भिक यौगिक अभ्यासों में भाग लेना
- रचनात्मक गतिविधियाँ - संगीत, नाटक, चित्रकारी, मिट्टी के आकार (खिलौने/मूर्ति) बनाना
- मूल्यों का विकास - किस्सों और कहानियों के माध्यम से

कक्षा III, IV और V

(i) एक भाषा - मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा

(ii) गणित

(iii) पर्यावरण अध्ययन

(iv) स्वस्थ और उत्पादक जीवन जीने की कला

- एकीकृत दृष्टिकोण
- संगीत, नृत्य, नाटक, कठपुतली कला, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, खेल-कूद, यौगिक अभ्यासों और उत्पादक कार्य में भाग लेना
- समुचित मूल्य अभिमुखता

उच्च प्राथमिक स्तर (3 वर्ष)

(i) तीन भाषाएँ

- मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा
- आधुनिक भारतीय भाषा
- अंग्रेज़ी

(ii) गणित

(iii) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

(iv) सामाजिक विज्ञान

(v) कार्य शिक्षा

(vi) कला शिक्षा (ललित कलाएँ : दृश्य और प्रदर्शनकारी)

(vii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा (खेल-कूद, योग, स्काउट और गाइड)

माध्यमिक स्तर (2 वर्ष)

(i) तीन भाषाएँ

- मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा
- आधुनिक भारतीय भाषा
- अंग्रेज़ी

(ii) गणित

(iii) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

(iv) सामाजिक विज्ञान

(v) कार्य शिक्षा

(vi) कला शिक्षा (ललित कलाएँ : दृश्य और प्रदर्शनकारी)

(vii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा (खेल-कूद, योग, एनसीसी और स्काउट और गाइड)

उच्चतर माध्यमिक स्तर

पाठ्यचर्या को अकादमिक धारा और व्यावसायिक धारा के तहत संयोजित किया जाना है, हालाँकि यह सुनिश्चित करना है कि दोनों के बीच उचित सम्बन्ध बने रहें और मजबूत किए जाएँ।

अकादमिक धारा

आधार पाठ्यक्रम :

(i) भाषा एवं साहित्य

(ii) कार्य शिक्षा

(iii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

वैकल्पिक पाठ्यक्रम

शिक्षा मण्डलों द्वारा निर्धारित विषयों में से तीन वैकल्पिक पाठ्यक्रमों का चुनाव।

व्यावसायिक धारा

(i) भाषा

(ii) सामान्य आधार पाठ्यक्रम

(iii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

(iv) व्यावसायिक विकल्प

विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 की खास विशेषताएँ

विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 की खास विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

एक समानान्तर प्रणाली के रूप में देशज ज्ञान

विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 भारतीय ज्ञान प्रणालियों और अन्य देशों द्वारा दिए गए ज्ञानात्मक योगदानों के बीच एक स्पष्ट समांतरता देखती है।[20] इसे स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित का विशिष्ट उल्लेख किया गया है : एक समग्रतावादी स्वास्थ्य प्रणाली के रूप में आयुर्वेद; पश्चिमी मनोविज्ञान की तुलना में अधिक पूर्णतायुक्त विषय के रूप में भारतीय मनोविज्ञान; भारतीय विचारकों के कार्य जैसे अरबिंदो, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फुले, महात्मा गाँधी, जाकिर हुसैन, गिजुभाई बधेका आदि; आर्यभट्ट के कार्य, शून्य की अवधारणा और दशमलव प्रणाली के निर्माण में भारत का योगदान; योग और योगाभ्यास आदि, को अधिकाधिक मान्यता देने की अनुशंसा की गई है। इस तरह के ज्ञान के क्षरण पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गई है जिसे निम्नांकित के जरिए सुधारने की आवश्यकता है:

> एक ओर देशज ज्ञान प्रणालियों, और दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान के कुछ क्षेत्रों और जीवन की मूल बातों से जुड़े विचार के बीच अन्तर्दृष्टियों में समांतरता का एक गहन विश्लेषण।[21]

देशों में अवधारणाओं और ज्ञान प्रणालियों के सन्दर्भ में समांतरता को देखना, और इसे देशभक्ति और गर्व का मुद्दा बनाना गलत प्रतीत होता है, क्योंकि यह बौद्धिक प्रतिगमन को बढ़ावा दे सकता है। विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 के निम्नांकित हिस्से को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इस गलती को अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया है :

> सार्वभौमिक प्रकृति की अधिकांश समस्याएँ किसी एक देश की सीमा चौकियों पर नहीं रुकती, बल्कि इसके विश्वव्यापी समाधान की माँग करती हैं।[22]

यहाँ यह टिप्पणी की जा सकती है कि ज्ञान प्रणालियाँ मूल रूप से सार्वभौमिक चिन्ताओं से सम्बन्धित होती हैं और विद्यालयीन शिक्षा के लिए एक पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करने के उद्देश्य से इन्हें इसी रूप में पहचानने की जरूरत है।

धर्म : मूल्य सृजन का एक प्रमुख स्रोत

ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 में, इसके रचनाकारों की ओर से पूर्ण स्पष्टता और विश्वास के साथ निम्नलिखित बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है।

> हालाँकि यह अनिवार्य मूल्यों का एकमात्र स्रोत नहीं है, फिर भी धर्म मूल्यों का एक प्रमुख स्रोत है।[23]

इस दृढ़ विश्वास के आधार पर, विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 सभी धर्मों की "मूल बातों" और "उनमें निहित मूल्यों" को शामिल करने की वकालत करती है और प्रारम्भिक वर्षों से ही शैक्षिक प्रणाली में उचित स्तरों पर "सभी धर्मों के दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" करने का भी आह्वान करती है।

दस्तावेज के रचनाकारों के अनुसार, विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफएसई)-2000 स्पष्ट रूप से बताती है कि धर्म किसी न किसी रूप में विद्यालयीन पाठ्यचर्या का एक अनिवार्य भाग है, विशेष रूप से मूल्यों का विकास।

शिक्षा पर जारी नीतिगत दस्तावेजों में जिस सामाजिक बदलाव को परिकल्पित किया गया है, उसके एक औजार के रूप में शिक्षा को निरूपित करने के उद्देश्य से विद्यालयीन बच्चों में मूल्य सृजन में धर्मों की सम्भावित भूमिका का यह एक और गलत आग्रह है।

धर्म और स्कूलों में उसके अध्ययन पर विद्यालयीन पाठ्यचर्या में गलत जोर देने की प्रकृति पर टिप्पणी करना यहाँ प्रासंगिक हो सकता है। इसे विशेष रूप से स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि धर्म मूल्यों का एक प्रमुख स्रोत नहीं है; न ही समस्या इन मूल्यों के विकास की है। शिक्षा में जोड़े जाने वाले मूल्य और इसलिए पाठ्यचर्या में शामिल किए जाने योग्य मूल्य कौन से हैं, यह उन मूल्यों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए जिनका भारतीय संविधान में उल्लेख है और/या जो भारतीय संविधान से प्राप्त किए जा सकते हैं। आगे, यहाँ यह दोहराया जा सकता है कि भारतीय संविधान में जिन मूल्यों को स्वीकृत किया गया है, वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार पर आधारित हैं; वे किसी विशेष धर्म/धर्मों से प्राप्त नहीं किए गए हैं, और न ही वे भारत में विभिन्न धर्मों द्वारा दर्शाए गए मूल्यों की समानताओं से प्राप्त किए गए हैं। स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार ने भारत के लोगों को धार्मिक या अन्य सामाजिक विभाजनों पर आधारित गुटों के रूप

में नहीं बल्कि सामूहिक रूप से संघर्ष करने के लिए जागृत किया था। एक स्वतंत्र, लोकतांत्रिक, और विकसित भारत की परिकल्पना ने उन्हें प्रेरणा और मार्गदर्शन प्रदान किया, एक ऐसे देश की परिकल्पना, जिसमें धर्मनिरपेक्षता, समानता, न्याय, समाजवाद और सामाजिक सामंजस्य के बुनियादी मूल्य पोषित होंगे। इसके अलावा, स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार और संविधान में निहित मूल्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के दर्शन की ओर संकेत करने वाले बिन्दु थे। यह वह परिकल्पना थी, जिसने भारत के संविधान के निर्माण की राह प्रशस्त की; विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार करने का मार्गदर्शन भी इसी परिकल्पना से प्राप्त होना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि एक परस्पर संवादात्मक प्रक्रिया के माध्यम से बच्चों में मूल्यों का विकास किया जाता है जिसमें संवेग, भावनाओं, मान्यताओं, आदर्शों, विश्वास और आत्मविश्वास जैसी व्यक्तिगत विशेषताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। अनेक सामाजिक कारक और सामाजिक निवेश, जिनमें सामाजिक वातावरण में धर्म से सम्बन्धित प्रभावों के परिणाम शामिल हैं, इस प्रक्रिया में योगदान देते हैं। इस अर्थ में, धर्म एक सहयोगी सामाजिक कारक के रूप में कार्य करता है, न कि बच्चों में विकसित किए जाने वाले मूल्यों की प्रासंगिकता का निर्णय करने वाले एक कारक के रूप में। इसके अलावा, धर्म व्यक्तियों पर पड़ने वाला एक सामाजिक प्रभाव है; यह एक ऐसा प्रभाव नहीं है जो शिक्षा की राज्य-प्रायोजित प्रक्रिया के माध्यम से नियोजित किया जाए और उन पर डाला जाए। अन्त में, इस परिणाम को प्राप्त करने के उद्देश्य से की गई कोई भी कोशिश एक और महत्त्वपूर्ण मूल्य का उल्लंघन है, जिसे धर्मनिरपेक्षता कहा जाता है। यही कारण है कि एक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत का कोई आधिकारिक राज्य धर्म नहीं है। भारतीय समाज में अनेक धर्म मौजूद हैं। इसी अर्थ में, भारत में धर्म समाजीकरण की प्रक्रिया में योगदान देता है और इस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया में एक प्रभाव के रूप में कार्य करता है।

एनसीएफएसई-2000 की कुछ खास विशेषताएँ, जिन्हें हम पाठ्यचर्या सम्बन्धी कुछ सरोकारों पर एक गलत तवज्जो के रूप में वर्णित करना पसन्द करते हैं, उन सरोकारों के अर्थों के अतिरेक या मिश्रण की दिशा में ले गई, जिसे टाला जा सकता था। उदाहरण के लिए, 'मूल्यों' जैसी अवधारणा को बच्चों की ओर से अधिगम एवं विकास के एकीकृत, अनोखे और विशिष्ट क्षेत्र के रूप में देखा गया था। अक्सर नैतिकता और आचारनीति के एक अतिरेक को मूल्यों के रूप में लिया गया था, या तो अच्छे या बुरे के रूप में; जबकि जरूरी नहीं है कि सभी मूल्यों में यह आयाम हों, कम-से-कम एक ही माप या स्तर पर हों यह जरूरी नहीं, अर्थात् वस्तुगतता, तर्कसंगतता, समय की

पाबन्दी, वैज्ञानिक मिजाज़, सहयोग, और शान्ति जैसे मूल्य समान स्तर की वांछनीयता, मूल्यवत्ता, और प्राथमिकता नहीं दर्शाते हैं।

ऐसा लगता है विद्यालयीन पाठ्यचर्या में शामिल किए जाने के सम्बन्ध में इन मूल्यों का विश्लेषण और संश्लेषण करने में उत्सुकता की कमी के कारण कुछ धार्मिक और सामाजिक और भाषाई समूहों ने इसे अलग-अलग अर्थ में लिया और अपने-अपने अर्थ पर बल दिया। उदाहरण के लिए, जैसी कुछ लोगों द्वारा व्याख्या की गई, हिन्दुत्व के अर्थ को राष्ट्रवाद के साथ जोड़ने के पीछे जनता के बीच बहुत अलग प्रकार की धारणाएँ बनाने का उद्देश्य था। इसी तरह, 'वसुधैव कुटुम्बकम' की कहावत, जो मानवीय रिश्तों की सार्वभौमिक भावना को कायम रखती है, एक विशिष्ट भाषा (संस्कृत) और एक विशेष धर्म (हिन्दू धर्म) की लोकप्रिय कल्पना से जुड़ गई है। इसके अलावा, एनसीएफएसई-2000 में एक धर्मनिरपेक्ष समाज के सिद्धान्त की स्पष्ट अभिव्यक्ति की गैर-मौजूदगी के बीच, यह दस्तावेज़ यह नहीं बताता है कि समान सम्मान सुनिश्चित करने के लिए सभी धार्मिक समूहों और सांस्कृतिक झुकावों को आपसी समानता के साथ किस तरह रखा जा सकता है।

बोध सम्बन्धी इस तरह की समस्याएँ, कभी-कभी अनजाने में और कभी-कभी जानबूझकर, कुछ धर्मों और सांस्कृतिक धाराओं की प्रस्तुति की दिशा में इस तरह ले जा सकती हैं कि बहसों और विवादों को बढ़ावा मिल सकता है। इस तरह के मामलों में एनसीएफएसई-2000 द्वारा प्रस्तुत की गई शैक्षिक प्रक्रिया की तस्वीर विवादास्पद हो गई। उदाहरण के लिए, यह महसूस किया गया था कि विद्यालयीन पाठ्यचर्या में स्थान देने की दृष्टि से एनसीएफएसई-2000 ने धर्म और संस्कृति के विषय में एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की थी, जिसका झुकाव एक तरफ था, और इसलिए इस पर हमेशा 'भगवाकरण' को बढ़ावा देने का आरोप लगा।

एनसीएफएसई-2000 : विवाद एक केन्द्र

एनसीएफएसई-2000 मौलिक और प्रयोगात्मक दोनों सन्दर्भों में इतना विवादास्पद हो गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत भारत के सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका (पीआईएल) दायर की गई थी। जनहित याचिका ने दो मुख्य दावे/तर्क प्रस्तुत किए गए।

1. एनसीएफएसई-2000 के लिए केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा बोर्ड (सीएबीई) की मंजूरी नहीं माँगी गई थी, और सीएबीई की स्वीकृति प्राप्त किए बिना, एनसीएफएसई-2000 को लागू नहीं किया जा सकता है।

2. एनसीएफएसई-2000 और उसके अधीन तय किया गया पाठ्यक्रम असंवैधानिक हैं, क्योंकि वे धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त का उल्लंघन करते हैं, जो संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा है।

   सर्वोच्च न्यायालय ने 12 सितम्बर 2002 को अपना फैसला सुनाया।

फैसला

सीएबीई से परामर्श नहीं लिए जाने के बारे में प्रस्तुत निवेदन सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खण्डपीठ द्वारा निम्नलिखित कारणों से स्वीकार नहीं किया गया।

1. सीएबीई समय-समय पर भारत सरकार के संकल्पों के माध्यम से गठित एक गैर-सांविधिक निकाय है। सरकार के कार्यकारी अधिकार के उपयोग द्वारा इसका गठन किया गया है, सीएबीई से परामर्श नहीं किए जाने से यह नहीं माना जा सकता है कि एनसीईआरटी द्वारा निर्धारित नीति किसी भी वैधानिक प्रावधानों या नियमों का उल्लंघन है।[24]
2. एनसीईआरटी का गठन नियमों के तहत किया गया है। इसमें पदेन सदस्यों के साथ-साथ संसद के प्रतिनिधि और शिक्षा के विशेषज्ञ भी शामिल हैं।
3. शिक्षा नीति या पाठ्यचर्या में ऐसा कुछ भी नहीं पाया गया है, जो कि भारत के संविधान के विरुद्ध है।[25]

तीन न्यायाधीशों ने सर्वसम्मति से लिया गया फैसला सुनाया और जनहित याचिका को खारिज कर दिया, वहीं दो न्यायाधीशों ने उनके अलग-अलग निर्णयों में कुछ टिप्पणियाँ की, जो शैक्षणिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं।

हालाँकि, भारतीय संघ को निर्देश दिया गया था कि सीएबीई की सदस्यता में रिक्तियों को भरने के मामले पर विचार किया जाए और नीति और पाठ्यचर्या पर राय माँगने के लिए सीएबीई की बैठक बुलाई जाए। (जस्टिस डी.एम. धर्माधिकारी)।

> हालाँकि यह सच है कि सीएबीई एक गैर-सांविधिक निकाय है, कोई भी इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता है कि यह 1935 से अस्तित्व में रहा है। इसे राज्यों और केन्द्र के बीच एक सार्थक साझेदारी के प्रभावी साधन के रूप में भी स्वीकार किया गया है, विशेषकर मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में प्रमुख नीतिगत मुद्दों पर आम सहमति विकसित करने के कार्य में। इसलिए, सीएबीई द्वारा निभाई गई भूमिका के महत्त्व को दलील के आधार पर खारिज या कमतर नहीं किया जा

सकता है कि निकाय गैर-सांविधिक है, खासतौर पर जब इसने राष्ट्रीय शिक्षा नीति से जुड़े प्रमुख नीतिगत निर्णयों पर सहमति बनाने में अतीत में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[26]

यह अब एक भलीभाँति स्थापित सिद्धान्त है कि अतीत के व्यवहारों और प्रथाओं से मिसालें बनती हैं और उनका पालन तब तक किया जाता है जब तक कि अन्यथा निर्णय न लिया जाए। सीएबीई के मामले में, नामांकित सदस्यों का कार्यकाल केवल तीन वर्ष का होता है, लेकिन पदेन सदस्यों के लिए कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता है। इसका अर्थ यह होगा कि अपने आप में सीएबीई के अस्तित्व में निरन्तरता है।[27]

इसलिए, भारतीय संघ को निर्देशित किया जाता है कि वह सीएबीई के नामांकित सदस्यों के लिए रिक्त पदों को भरने पर विचार करें और एनसीएफएसई-2000 पर उसकी राय माँगने के लिए यथासम्भव शीघ्र सीएबीई की एक बैठक बुलाए, जो किसी भी स्थिति में आगामी शैक्षणिक सत्र से पहले हो। हालाँकि, इसका अर्थ यह नहीं होगा कि एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित एनसीएफएसई-2000 सीएबीई के परामर्श के बिना अवैध है। (जस्टिस एच.के. सेमा)।[28]

तीन न्यायाधीशों ने अपने अलग-अलग निर्णयों में निर्दिष्ट मामलों पर निम्नलिखित निर्देश दिए। न्यायाधीशों द्वारा जारी किए गए निर्देश शिक्षा की प्रकृति और उसकी प्रक्रियाओं की ओर इंगित करते हैं। इसके अलावा, वे शिक्षाविदों के हित में न्यायपालिका की सीमाएँ स्पष्ट करते हैं, जिनके भीतर रहते हुए सर्वोच्च न्यायालय सरकार और शिक्षा प्रणाली को निर्देशित कर सकता है।

विद्वान वकील श्री वैद्यनाथन ने अदालत के समक्ष तर्क प्रस्तुत किया कि एनसीएफएसई-2000 छात्रों को 'प्रतिभावान' और अन्यथा के रूप में वर्गीकृत करने की कोशिश में भारत के संविधान के अनुच्छेद-14 के विपरीत जाता है, और इसलिए केवल 'आध्यात्मिक लब्धि' और 'बुद्धि लब्धि' के आधार पर अलग व्यवहार की पात्रता तय करता है। श्री वैद्यनाथन ने तर्क प्रस्तुत किया कि संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा छात्रों के परीक्षण के लिए 'बुद्धि लब्धि' पद्धति को अप्रामाणिक पद्धति घोषित करते हुए उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, और यह कि 'आध्यात्मिक लब्धि' प्रणाली दुनिया में कहीं और प्रामाणिक नहीं है। इसलिए, इस तरह के वर्गीकरण का आधार पूरी तरह से मनमाना है।

उपरोक्त प्रश्न पर अनुच्छेद-32 के तहत एक रिट याचिका पर निर्णय नहीं किया जा सकता है। यह विशेषज्ञों (जोर देकर कहा गया) का कार्यक्षेत्र है कि वे छात्रों के श्रेष्ठता/श्रेणीकरण मानकों के मानदण्ड तय करें और यह तय करें कि संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाए गए मानदण्डों का पालन किया जाना चाहिए या नहीं।[29]

याचिका में शामिल कुछ अन्य मामलों पर न्यायमूर्ति डी.एम. धर्माधिकारी ने अपने अलग फैसले में यह अभिमत दर्ज करवाए :

> शैक्षिक प्रणाली में अलग-अलग उम्र और विभिन्न स्तरों के बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तकों में शामिल की जाने वाली सामग्री का सही तरीके से चयन करते हुए यह धार्मिक बहुलता देश के 'धर्मनिरपेक्ष विचार' के अनुरूप किस तरह विकसित हो, इसे शिक्षकों और शिक्षाविदों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। सभी गणमान्य व्यक्तियों और सम्बन्धित क्षेत्रों के अन्य विशेषज्ञों के साथ उनका जुड़ाव जरूरी है। इस कवायद को सरकार द्वारा किया जाना है जिसके लिए न्यायालय को कोई भी निर्देश देने की न तो आवश्यकता है और न ही न्यायालय ऐसी शक्ति ग्रहण कर सकता है, जिससे राज्य द्वारा शैक्षणिक नीति तैयार करने के क्षेत्र का अतिक्रमण किया जा सके।
>
> विचारक और दार्शनिक विद्यालयों में धर्मों का शिक्षण शुरू करने की अनुशंसा दृढ़ता से करते हैं। उनके बीच इस बात को लेकर मतभेद हो सकते हैं कि इसे शिक्षा के किस चरण में आरम्भ किया जाना चाहिए। क्या इसे प्राथमिक चरण से ही आरम्भ कर दिया जाना चाहिए, यह बहस का एक विषय हो सकता है, और शैक्षिक नीति तैयार करने में सहायता करना न्यायालय का नहीं बल्कि शिक्षकों और शिक्षाविदों का काम है।[30]

5. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005

पृष्ठभूमि

विद्यालयीन शिक्षा से जुड़े लोगों में राष्ट्रीय सलाहकार समिति (1993) की रिपोर्ट, 'लर्निंग विदाउट बर्डन' (बोझमुक्त अधिगम), में प्रस्तुत किए गए विचारों और अनुशंसाओं पर चर्चा चलती रही है। तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री ने 2004 में लोकसभा में एक बयान दिया, जिसमें कहा गया कि एनसीईआरटी को एनसीएफएसई-2000 में संशोधन की जिम्मेदारी हाथ में लेनी चाहिए। इस कथन के बाद, 14 जुलाई 2004 को आयोजित बैठक में एनसीईआरटी की कार्यकारी समिति ने एनसीएफएसई-2000 को संशोधित करने का निर्णय लिया। इसके बाद, शिक्षा सचिव, मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने निदेशक, एनसीईआरटी को सूचित किया कि 'लर्निंग विदाउट बर्डन' (बोझमुक्त अधिगम) रिपोर्ट (1993) की रोशनी में एनसीएफएसई-2000 की समीक्षा की आवश्यकता है। तदनुसार, प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय संचालन समिति और 21 राष्ट्रीय फोकस समूह (एनएफजी) गठित किए गए। संचालन समिति ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 तैयार की, जिसे सीएबीई ने 7 सितम्बर 2005 को आयोजित बैठक में स्वीकृत किया।

मुख्य सरोकार

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 लर्निंग विदाउट बर्डन रिपोर्ट में प्रस्तुत की गई अन्तर्दृष्टियों पर आधारित है और उन का विस्तार करती है। ये अन्तर्दृष्टियाँ पूर्ण आस्था और भरोसे के साथ इस तथ्य को स्वीकार करने की जरूरत बताती हैं कि बच्चे के पास अपने अनुभवों से ही ज्ञान के निर्माण की अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति और क्षमता होती है। शिक्षण को बच्चे की रचनात्मक प्रकृति के इस्तेमाल का एक प्रभावी साधन बनाने के उद्देश्य से, विद्यालयीन पाठ्यचर्या के संयोजन और इससे जुड़े हुए परीक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण और शिक्षा के प्रशासन से सम्बन्धित प्रणालीगत सुधारों के लिए एक मूलभूत परिवर्तन की परिकल्पना की गई है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और परीक्षा सुधार की रूपरेखा तय करने में शामिल शिक्षकों, प्रशासकों और अन्य एजेंसियों को तर्कसंगत विकल्प चुनने और निर्णय लेने में शरीक हो सकें, के लिए सक्षम बनाने का लक्ष्य रखती है। यह उन्हें नवाचारी, स्थानीय रूप से व्यावहारिक कार्यक्रमों के विकास और कार्यान्वयन में सक्षम बनाने की कोशिश करती है। इससे

समकालीन सामाजिक वास्तविकता से रूबरू होकर पाठ्यचर्या के नवीनीकरण की चुनौतियाँ अपना सन्दर्भ हासिल कर सकती हैं।

एनसीएफ-2005 पाठ्यचर्या विकास के लिए पाँच मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रस्तुत करती है:

1. ज्ञान को विद्यालय के बाहर के जीवन के साथ जोड़ना
2. यह सुनिश्चित करना कि सीखना रटने के तरीकों से दूर रखा जाए
3. पाठ्यचर्या को समृद्ध बनाना ताकि वह पाठ्यपुस्तकों से परे जाए
4. परीक्षाओं को और लचीला बनाना और उन्हें कक्षा के जीवन के साथ एकीकृत करना, और
5. एक ऐसी पहचान विकसित करना, जो भारतीय लोकतांत्रिक राज्य-व्यवस्था के मूलभूत मूल्यों से गढ़ी जाए और प्रभावित हो।

एनसीएफ-2005 में उभारे गए मुख्य सरोकारों पर प्रकाश डालने के लिए निम्नानुसार कुछ बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है।

- शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और किसी समतावादी सामाजिक व्यवस्था के एक साधन के रूप में कार्य करना चाहिए।
- हमारी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय पहचान को मजबूत बनाने के लिए, पाठ्यचर्या को नई प्राथमिकताओं और उभरते सामाजिक सन्दर्भों को देखते हुए युवा पीढ़ी को अतीत की पुनर्व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन करने में सक्षम बनाना चाहिए।
- शिक्षा की गुणवत्ता में जीवन की गुणवत्ता के लिए सरोकार शामिल हैं, जीवन के सभी आयामों को समेटते हुए। यही कारण है कि शान्ति, पर्यावरण संरक्षण के लिए सरोकार और सामाजिक परिवर्तन के लिए मनोवृत्ति को गुणवत्ता के मूलभूत घटकों के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि महज मूल्यों की आधार भूमि के रूप में।
- भारत में शिक्षा का सामाजिक सन्दर्भ कई चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है, जिन्हें एनसीएफ-2005 के जरिए सम्बोधित किया जाना चाहिए, इसकी रूपरेखा और इसके कार्यान्वयन दोनों स्तरों पर।
- एनसीएफ-2005 नए क्षेत्रों और अनुभवों को शामिल करने के लिए ज्ञान की अवधारणा का विस्तार करना चाहती है। एनसीएफ-2005 के विभिन्न हिस्सों में जिन नए क्षेत्रों पर चर्चा की गई है, उनमें अधिगम के कार्यभारों के चयन की समावेशी प्रथाएँ और ऐसे पेडॅगोजि सम्बन्धी अभ्यास शामिल हैं, जो पाठ्यचर्या के निर्णयों की व्याख्या करने व उन्हें साझा करने की प्रक्रिया में सहभागिता को बढ़ावा देते हैं, आत्मविश्वास का निर्माण करते हैं,

समालोचनात्मक जागरूकता को गहराई प्रदान करते हैं और बृहत समुदाय के साथ जुड़ाव को प्रोत्साहित करते हैं।

- पाठ्यचर्या का उद्देश्य चुने हुए आदर्शों और स्वीकृत सिद्धान्तों के साथ शैक्षिक प्रक्रियाओं को पंक्तिबद्ध करना है। यह लक्ष्य किसी समाज की मौजूदा जरूरतों, आकांक्षाओं और मूल्यों, किसी समुदाय की तात्कालिक चिन्ताओं और व्यापक मानव आदर्शों को प्रतिबिंबित करता है। किसी भी समय किसी भी समाज के लिए, पाठ्यचर्या के उद्देश्य की व्याख्या व्यापक और चिरस्थायी मानवीय आकांक्षाओं और मूल्यों की समकालीन और सन्दर्भित अभिव्यक्ति के रूप में की जा सकती है।

विभिन्न विद्यालयीन स्तरों पर पाठ्यचर्या के क्षेत्र

एनसीएफ-2005 ने कुल आठ पाठ्यचर्या क्षेत्रों की अनुशंसा की है। इनमें से चार सुपरिचित हैं, यानी भाषा, गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान। एनसीएफ-2005 चार अन्य पाठ्यचर्या क्षेत्रों, यानी कार्य, कला एवं परम्परागत शिल्प, स्वास्थ्य व शारीरिक शिक्षा और शान्ति की ओर ध्यान आकर्षित करती है। यह इन चार पाठ्यचर्या क्षेत्रों को उपरोक्त प्रथम चार क्षेत्रों के समकक्ष लाने की कोशिश करती है।

इन पाठ्यचर्या क्षेत्रों की विशिष्टताओं से रूबरू होते हुए, एनसीएफ-2005 उन बिन्दुओं पर प्रकाश डालती है, जिन्हें प्रत्येक क्षेत्र में विषयवस्तु के विवरणों के सूत्रीकरण और विभिन्न चरणों में उनके कार्यान्वयन को निर्धारित करना चाहिए। प्रमुख बिन्दु हैं :

- वह दृष्टिकोण जिससे विषय ज्ञान और अधिगम को देखा जाना चाहिए।
- पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के निर्माण और विभिन्न संसाधनों के उपयोग की पद्धति।
- शिक्षार्थी के विकास और स्कूली शिक्षा के विभिन्न चरणों में शिक्षा के सामाजिक प्रयोजन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण बिन्दु।
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के उद्देश्य से पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के साथ प्रणालीगत सुधारों का जुड़ाव।

इन मामलों पर एनसीएफ-2005 और 21 सहायक दस्तावेजों - राष्ट्रीय फोकस समूहों की रिपोर्ट : स्थिति पत्रों - में बहुत विस्तार से चर्चा की गई है। एनसीएफ-2005 में उभारे गए कुछ बिन्दु उदाहरण के रूप में निम्नानुसार हैं।

- पढ़ना, लिखना, सुनना और बात करना सभी पाठ्यचर्या क्षेत्रों में बच्चे की प्रगति में योगदान देते हैं, और इसलिए यह पाठ्यचर्या नियोजन का आधार होना चाहिए।
- विषय की सीमाओं को हलका किया जाना चाहिए ताकि बच्चे को एकीकृत ज्ञान का स्वाद और सीखने के आनन्द का अनुभव मिले।
- गणित के अध्यापन को सोचने और तर्क करने, अमूर्तताओं की परिकल्पना और इस्तेमाल, समस्याओं के सूत्रीकरण और हल करने की बच्चे की क्षमता को बढ़ाना चाहिए। गणित में अच्छा प्रदर्शन करना हर बच्चे के अधिकार के रूप में देखा जाना चाहिए।
- पर्यावरण सम्बन्धी सरोकार पर प्रत्येक विषय के अध्यापन में और बड़े पैमाने पर ऐसी गतिविधियों के माध्यम से जोर दिया जाना चाहिए, जिनमें बाहरी परियोजना कार्य (आउटडोर प्रोजेक्ट वर्क) शामिल हों।
- सामाजिक विज्ञान के सभी क्षेत्रों में दरकिनार समूहों के दृष्टिकोण का सम्मान करने, लैंगिक न्याय के महत्त्व को समझने और आदिवासी व दलित मुद्दों और अल्पसंख्यक संवेदनाओं के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने की आवश्यकता है।
- 'कार्य' ज्ञान को अनुभव में बदलता है और निर्भरता, रचनात्मकता और सहयोग जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों को उत्पन्न करता है।
- सभी चरणों में एक विषय के रूप में कला के शिक्षण की अनुशंसा की जाती है, जिसमें सभी चार प्रमुख क्षेत्रों यानी संगीत, नृत्य, दृश्य कला और नाट्यकला शामिल हैं। सौन्दर्य बोध और व्यक्तिगत जागरूकता को बढ़ावा देने और विभिन्न रूपों में स्वयं को अभिव्यक्त करने की क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से संवादात्मक दृष्टिकोण विकसित करने पर जोर दिया जाना चाहिए।
- यह सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है कि स्कूल-पूर्व और उससे ऊपर के स्तर पर स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों में लड़कियों की शिक्षा पर लड़कों के बराबर ही ध्यान दिया जाए।
- लोकतंत्र और न्याय की संस्कृति में बच्चों का समाजीकरण करने में शान्ति शिक्षा की क्षमता का उपयोग उन्हें उपयुक्त गतिविधियों में संलग्न करके किया जाना चाहिए, जिसके लिए सभी स्तरों पर सभी विषयों में विषयवस्तु का चयन बहुत विवेकपूर्ण ढंग से किए जाने की आवश्यकता है।

- बच्चों के लिए अधिक अधिगम संसाधन, विशेष रूप से क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकें और सन्दर्भ सामग्री, तैयार करने के लिए, विद्यालय और शिक्षक के लिए सन्दर्भ पुस्तकालय, और प्रसारात्मक प्रौद्योगिकियों की बजाय संवादात्मक तकनीकों तक पहुँच प्रदान करने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अनेक और लचीले विकल्पों को बढ़ावा देने के लिए, निश्चित धाराओं में बच्चों को रखने की मजबूती से स्थापित प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने के लिए और बच्चों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए उपलब्ध सीमित अवसरों का विस्तार करने के लिए कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।
- शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के साथ-साथ इस लक्ष्य को पूरा करने में जवाबदेही बढ़ाने के साधन के रूप में सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।
- सेवा-पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम अधिक व्यापक और लम्बे होना चाहिए, जो बच्चों के अवलोकन के लिए और विद्यालय इंटर्नशिप के माध्यम से व्यवहार के साथ शैक्षणिक सिद्धान्त को एकीकृत करने के लिए पर्याप्त अवसर जुटा सकें।
- पाठ्यचर्या के नवीनीकरण और खासतौर पर दसवीं और बारहवीं कक्षा में बच्चों और उनके माता-पिता के सामने आने वाले मनोवैज्ञानिक दबाव की बढ़ती समस्या का समाधान खोजने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण प्रणालीगत उपाय परीक्षा सुधार हैं।
- विद्यालय प्रणाली और नागरिक समाज समूहों, जिनमें गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) तथा शिक्षक संगठन शामिल हैं के बीच एक साझेदारी को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

एनसीएफ-2005 ने अपने अलग-अलग हिस्सों में शिक्षा की स्थितियों का अलग-अलग चरणों में विश्लेषण किया है और इनका उपयोग विद्यालय के अलग-अलग चरणों में शिक्षा की प्रणाली में पेडॅगोजि सम्बन्धी और संगठनात्मक तौर-तरीकों की समस्याओं और सीमाओं को स्पष्ट रूप से देखने के लिए किया है। एनसीएफ-2005 में व्यक्त किए गए विद्यालयीन शिक्षा के उद्देश्यों और लक्ष्यों के प्रकाश में इनकी और जाँच की गई है। इसने पाठयक्रम क्षेत्रों की पहचान करने, पेडॅगोजि सम्बन्धी उपायों को अपनाने और शिक्षक प्रशिक्षण, परीक्षा, संगठनात्मक संरचनाओं के साथ मैदानी स्तर पर सक्रिय विभिन्न अन्य एजेंसियों के साथ आवश्यक सहयोग जैसी सम्बद्ध प्रणालियों में व्यवस्थागत सुधारों को स्पष्ट करने के लिए मुख्य तर्क के रूप में कार्य किया है।

एनसीएफ-2005 पाठयचर्या अध्ययनों की एक लचीली योजना की अनुशंसा करती है, जो विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आने वाले शिक्षार्थियों के विभिन्न समूहों की तरह-तरह की आवश्यकताओं

को पूरा करे और जो उनकी विकासात्मक जरूरतों को पूरा करे। व्यक्तिगत शिक्षार्थी के स्तर पर, एनसीएफ-2005 अनुशंसा करती है कि छात्र की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा के माध्यम से उसकी सामाजिक पहचान को विकसित करने और अवधारणात्मक जागरूकता और अन्य विशेषताओं को प्राप्त करने में मदद करने के लिए उसे उचित अवसर और अनुभव मिलना चाहिए, जो चिरस्थायी मूल्यों के अनुरूप हों जैसे धर्मनिरपेक्षता, समानता, निष्पक्षता और सामाजिक न्याय, जो नए समाज के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। एनसीएफ-2005 यह स्वीकार करती है कि इन सभी लक्ष्यों को पूरा करने के लिए पाठ्यचर्या योजना का निर्माण शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है, यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो कई प्रणालियों और एजेंसियों के बीच सहयोग का आह्वान करती है। एनसीएफ-2005 में सुझाई गई पाठ्यचर्या काफी हद तक भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए है, और इसलिए सम्भव है कि यह आसानी से मौजूदा परिस्थितियों के अनुकूल न दिखाई दे। इस चुनौती को पूरा करने के लिए, बड़ी तत्परता के साथ बड़े पैमाने पर गम्भीर कोशिशें करनी होंगी।

बुनियादी मूल्यों के रूप में ज्ञान और समझ

एनसीएफ-2005 यह स्वीकार करती है कि ज्ञान और समझ उस सीखने के परिणाम होते हैं, जिसके साथ बच्चे का जुड़ाव होता है। इस बारे में, यह समझना जरूरी है कि बच्चे में अपने जीवन की शुरुआत से ही सीखने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। "शिक्षा" के सम्पर्क में आने से पहले, वह समाजीकरण के माध्यम से सीखने की गतिविधियों में संलग्न रहता है। सीखने की अपनी स्वयं की गतिविधियों के माध्यम से वह जो कुछ सीखता है, उससे वह नींव तैयार होती है, जो आगे लगातार उसके ज्ञानार्जन का आधार बनती है। इस प्रकार, बच्चे द्वारा अपनी तरफ से सीखना अन्दरूनी तौर पर उसके स्वयं के परिवेश से जुड़ा हुआ होता है। इसके अलावा, यहाँ तक कि जब बच्चा विद्यालय में भर्ती किया जाता है, तब भी उसके परिवार और समुदाय का माहौल पहले से ही अधिगम क्षेत्र के रूप में काम कर चुका होता है, और आगे के जीवन में भी वही भूमिका निभाता है। इस अर्थ में, प्रत्येक बच्चा, वास्तव में प्रत्येक पीढ़ी, ज्ञान को विरासत से हासिल करती है और इसे अपनी गतिविधियों के ताने-बाने के साथ एकीकृत करती है। विरासत में मिले ज्ञान के साथ अपने स्वयं के अनुभव को एकीकृत करने की इस प्रक्रिया के माध्यम से, बच्चे को एक ताज़गी देने वाले नए अनुभव के सम्पर्क में आने का मौका मिलता है। इस तरह बच्चा अपने स्वयं के अनुभव को ताज़ा करता है और नवीन ज्ञान सृजित करता है। और वह अपनी स्वयं की सीखने

की गतिविधि के माध्यम से ज्ञान का सृजनकर्ता बन जाता है। स्कूली शिक्षा को बच्चे को सीखने का एक उपयुक्त वातावरण और सीखने की स्फूर्तिदायक गतिविधियाँ उपलब्ध करानी चाहिए, जो उसे ताज़गी भरे नए अनुभवों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करे और इस तरह वह खुद के लिए ज्ञान और समझ पैदा कर सके।

यहाँ इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि शिक्षार्थी द्वारा ज्ञान के सृजन या निर्माण या अर्जन का अर्थ उसके पिछले ज्ञान या अनुभव को एक नई रोशनी में देखना है। यह तभी सम्भव है जब शिक्षा के माध्यम से सीखना उसे अनुभव में नए अर्थों की खोज या अलग तरीके से इसकी पुनर्व्याख्या की दिशा में ले जाए। शिक्षार्थी एक नया अर्थ खोज सकता है, या अपने अनुभव की पुनर्व्याख्या कर सकता है, या अपने अनुभव और अपने सीखने के बीच एक नए सम्बन्ध का अनुभव कर सकता है। इस प्रकार अर्जित ज्ञान शिक्षार्थी के लिए ताज़ा और नया होगा, और इस प्रकार वह बहुत जायज रूप से, स्वयं के लिए ज्ञान का सृजनकर्ता बन जाएगा। शिक्षक को पहले से ही इस तरह का ज्ञान हो सकता है, और यह उसके लिए एक खोज या एक नई व्याख्या नहीं हो सकती, फिर भी बच्चे के लिए यह ज्ञान सृजित करने का एक अनुभव हो सकता है क्योंकि वह उसे अपनी गतिविधि और सीखने के अनुभव के माध्यम से प्राप्त करता है।

सीखने के इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, यह जरूरी है कि सीखने के क्षेत्र में इतनी जगह हो कि शिक्षार्थी अवधारणाओं के साथ जुड़ सकें और तथ्यों या सूचनाओं को महज रटने/याद करने के लिए मजबूर होने के बजाय उनके विषय में गहरी समझ हासिल कर सकें।

यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक हो सकता है कि मध्यस्थता के बिना भी सीखना सम्भव है। उदाहरण के लिए, सामाजिक परस्परक्रिया शिक्षार्थियों को स्वयं के स्तर से ऊँचे संज्ञानात्मक स्तरों पर काम करने के लिए अवसर देती है।[31]

पाठयचर्या के चुनाव के सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बिन्दु शिक्षार्थियों के विकास के चरण-विशिष्ट लक्षणों से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति के लिए स्वयं की पहचान के लिए किशोरावस्था विकास की एक महत्त्वपूर्ण अवधि होती है। यह एक ऐसा समय होता है, जब दिए गए और आत्मसात किए गए आन्तरिक मूल्यों और विचारों पर सवाल उठाए जाते हैं। इसी समय, दूसरों की राय और अपने हमउम्र समूह की राय बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इस अवधि में बच्चों को सामाजिक और भावनात्मक सहायता की आवश्यकता होती है।

पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 इस बात पर जोर देती है कि निश्चित ही अधिगम अक्षमताएँ मस्तिष्क सम्बन्धी क्षति, मानसिक मन्दता, और सामाजिक, भावनात्मक या परिवेशात्मक बाधाओं जैसी

अन्य समस्याओं के साथ पनप सकती हैं, मगर इन्हें अपर्याप्त और अनुचित शिक्षण के परिणाम के रूप में भी देखा जाता है। अनुसन्धान, विशेष नैदानिक परीक्षण, और योजनाबद्ध व्यक्तिगत उपचारात्मक कार्यक्रम वे आवश्यक कार्य हैं, जिन्हें हाथ में लिया जाना चाहिए। इस तरह के अनुसन्धान और विकास कार्यों से पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया को मजबूती प्रदान करने के लिए बहुत उपयोगी निवेश (इनपुट्स) मिलते हैं। नतीजतन, विभिन्न प्रकार के विकलांग बच्चों के साथ श्रेणियों के रूप में व्यवहार करने और उनके लिए 'ठप्पा' (लेबल) बनाने से ध्यान हटते हुए बच्चों का व्यक्तिगत विकास मुख्य चिन्ता का विषय बन जाता है।

आलोचनात्मक पेडॅगोजि

ऊपर संक्षेप में वर्णित दो सैद्धान्तिक स्थितियों, अर्थात एक स्वाभाविक शिक्षार्थी के रूप में बच्चा और शिक्षा के उद्देश्य, जिन पर एनसीएफ-2005 में जोर दिया गया है, के चलते पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से देखा जाता है।

1. बच्चे यह जानते हैं कि उनके अनुभव और धारणाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए, स्वतंत्र रूप से सोचने और तर्क करने और असहमत होने का साहस दिखाने के लिए उन्हें आवश्यक मानसिक कौशल विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
2. लैंगिक, वर्गीय और वैश्विक असमानताओं के प्रति संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए, पेडॅगोजि को न केवल अलग-अलग व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों की पुष्टि करनी चाहिए, बल्कि इन्हें सत्ता की बृहत संरचनाओं के भीतर भी स्थापित करना चाहिए और इस तरह के प्रश्न पूछना चाहिए कि 'किसे किसके लिए बोलने की इजाजत है? किसका ज्ञान सबसे महत्त्वपूर्ण है?'[32]

एक ऐसा पेडॅगोजि, जो शिक्षार्थियों को शिक्षा की 'सामाजिक सोद्देश्यता' के प्रति संवेदनशील बनाता है, 'आलोचनात्मक पेडॅगोजि' कहलाता है, जिसे एनसीएफ-2005 में विशिष्ट दिशानिर्देशन के साथ व्यक्त और उदाहरणों सहित स्पष्ट किया गया है।

ज्ञान

एनसीएफ-2005 ज्ञान की कल्पना मोटेतौर पर इस प्रकार करती है :

1. भाषा के माध्यम से अनुभव का विचारों के प्रतिरूपों (पैटर्न) या अवधारणाओं की संरचनाओं के रूप में संयोजन, इस प्रकार ऐसे अर्थ सृजित करना जो बदले में हमें उस दुनिया को समझने में मदद करें, जिसमें हम रहते हैं।
2. गतिविधि या शारीरिक कुशलता के प्रतिरूपों का विचार के साथ सम्मिश्रण, और दुनिया में कार्य करने और चीजों को रचने और बनाने में योगदान करना।
3. सोचने, महसूस करने और चीजों को करने, और अधिक ज्ञान के निर्माण के तरीकों का एक खज़ाना।

सभी बच्चों को अपने लिए इस सम्पदा का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा फिर से बनाना होगा, क्योंकि यह आगे की सोच और इस दुनिया में उचित रूप से कार्यरत रहने का आधार है।

मूल्यों और कौशलों को समझने की बच्चों की क्षमताओं के विकास के सन्दर्भ में एनसीएफ-2005 उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत करती है :

1. भाषाएँ और अभिव्यक्ति के अन्य रूप, जो अर्थ-निर्माण और इन्हें दूसरों के साथ साझा करने का आधार प्रदान करते हैं।
2. सामाजिक दुनिया के साथ, और खुद के साथ हमदर्दी, संवेदनशीलता और मानवीय मूल्यों के आधार पर सम्बन्ध बनाना और कायम रखना, और
3. कार्य और कार्रवाई के लिए क्षमताएँ, जिसमें शारीरिक गतिविधि के साथ विचार और इच्छा शक्ति का समन्वय शामिल है, जो कौशल और समझ पर आधारित हैं, और जो कुछ उद्देश्य प्राप्त करने या कुछ रचने/बनाने की कोशिश करती हैं।[33]

इस प्रकार शिक्षार्थी द्वारा हासिल किए गए अधिगम के व्यापक क्षेत्र को दर्शाने के लिए यहाँ ज्ञान को लिया जा रहा है। इसमें अवधारणाएँ, कुशलता (चीज़ों की रचना करने और बनाने का कौशल और क्षमता), और सोचने, महसूस करने और काम करने के तरीकों का एक खज़ाना शामिल है। ये सभी तत्व मिलकर शिक्षार्थी को उसके आसपास के वातावरण, और उसमें उसके अपने स्थान और पहचान को समझने में सक्षम बनाते हैं, और इसलिए उसे आगे और सीखने और कार्रवाई करने के लिए तैयार करते हैं। इस व्यापक अर्थ में, जानने के विविध पहलू - ज्ञानात्मक, अनुभूति और कार्रवाई करना - महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। यह जीवन और उसके आसपास की दुनिया के बारे में शिक्षार्थी की समझ को एकीकृत ढंग से प्रभावित करते हैं।

बच्चों का ज्ञान और स्थानीय ज्ञान

बच्चों के ज्ञान के सन्दर्भ में स्थानीय ज्ञान का महत्त्व समझने के लिए, एनसीएफ-2005 निम्नलिखित बातों पर जोर देती है।

1. बच्चे का समुदाय और स्थानीय परिवेश वह प्राथमिक सन्दर्भ निर्मित करता है, जिसमें सीखने की क्रिया होती है और जिसमें ज्ञान अपनी सार्थकता प्राप्त करता है।
2. एक बच्चे का अधिगम उसके सन्दर्भ में स्थित होना चाहिए। इसके अलावा, बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से विद्यालय को अलग करने वाली सीमा को झिरझिरा बनाया जाना चाहिए।
3. यह केवल इसलिए नहीं है कि स्थानीय परिवेश और बच्चे के अपने अनुभव ज्ञान के अनुशासनों या विषयों के अध्ययन के सर्वश्रेष्ठ 'प्रवेश बिन्दु' हैं, बल्कि इसलिए भी कि ज्ञान का उद्देश्य हमें 'दुनिया के साथ' जोड़ना है। यह एक साध्य का साधन नहीं है, बल्कि एक साधन और साध्य दोनों है।
4. सामुदायिक जीवन की भविष्य की परिकल्पना के साथ अधिगम का सम्बन्ध जोड़ने के लिए, बच्चों के बीच इस चिन्तन को प्रोत्साहित करना महत्त्वपूर्ण है कि किसी चीज को जानने का क्या अर्थ है, और जो कुछ सीखा गया है उसका उपयोग कैसे किया जाए। सीखने वाले को अपने स्वयं के सीखने में एक सक्रिय सहभागी के रूप में अनिवार्य रूप से मान्यता दी जानी चाहिए।
5. विद्यालय के साथ-साथ जब 'स्कूली शिक्षा के क्षेत्र' के आस-पास की दुनिया को आलोचनात्मक चिन्तन के लिए उपलब्ध कराया जाता है, तो पर्यावरण के मुद्दों के साथ शिक्षार्थी का जीवन्त सम्पर्क स्थापित हो जाता है और यह सरोकार फिर कई वर्षों तक उसके दिलोदिमाग में बना रहता है।
6. विद्यालय के ज्ञान द्वारा एक ऐसी दृष्टि प्रदान की जानी चाहिए, जिसके माध्यम से बच्चे अपनी वास्तविकता के बारे में एक आलोचनात्मक समझ विकसित कर सकें। इस सन्दर्भ में यह स्वीकार करना जरूरी है कि विद्यालयीन ज्ञान को समुदाय की सामाजिक-सांस्कृतिक दुनिया के साथ जोड़ना भी दमनकारी हो सकता है और यह सामाजिक विषमताओं और पदानुक्रमों को मजबूत कर सकता है। इसलिए, जहाँ पाठ्यचर्या विकसित करने वालों को ज्ञान और अनुभवों के विशेष रूपों के समावेश या बहिष्करण से जुड़े सवालों के प्रति खुला और ग्रहणशील रहना चाहिए, वहीं समुदाय के सदस्यों के बीच एक आलोचनात्मक जागरूकता

विकसित करने की जरूरत है, जो उन्हें स्कूली ज्ञान और अनुभव के शैक्षिक मूल्य को समझने और उसका मूल्यांकन करने में सक्षम बनाएगी।

विद्यालयीन पाठ्यचर्या

जैसा कि पहले बताया गया है, एनसीएफ-2005 ने विद्यालयों के लिए सभी आठ पाठ्यचर्या क्षेत्रों की पहचान की है। भाषा, गणित, प्राकृतिक विज्ञान, और सामाजिक विज्ञान के चार परिचित क्षेत्रों के अलावा, एनसीएफ-2005 ने अधिगम के निम्नलिखित चार क्षेत्रों को भी - कला शिक्षा, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, कार्य एवं शिक्षा और शान्ति के लिए शिक्षा - शिक्षा के लिए समान रूप से प्रासंगिक होने के नाते स्कूल पाठ्यचर्या में अध्ययन के सम्पूर्ण क्षेत्रों के रूप में शामिल करने के लिए मान्य किया है।

जैसा कि सर्वविदित है, अधिगम के इन क्षेत्रों में से पहले दो को लम्बे समय से 'पाठ्येतर' कहा जाता रहा है। यह नामकरण अपने आप में उनकी प्रासंगिकता का अवमूल्यन करता है। शेष दो में से, कार्य और शिक्षा वास्तविक जीवन की स्थितियों के लिए अधिक प्रासंगिक शिक्षा प्रदान करने के मामले में अपने रुझान और प्रतिसंवेदनशीलता (responsiveness) में नया क्षेत्र है। वास्तव में, शिक्षा को लेकर सामाजिक जरूरतों पर बहस, और उन जरूरतों के प्रति इसकी प्रतिसंवेदनशीलता के कारण इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का उदय हुआ है। 'कार्य और शिक्षा' के इस क्षेत्र का मुख्य जोर शिक्षा को जीवन की आवश्यकताओं से जोड़ने पर है। हालाँकि, कार्य और शिक्षा के बीच पारम्परिक रूप से कमजोर सम्बन्ध के कारण, इसने वस्तुत: और संगठनात्मक दृष्टि से चुनौतियों का सामना किया है। इस प्रकार इसकी अवधारणाएँ और क्रियाविधियाँ विकसित हो रहे हैं। शान्ति के लिए शिक्षा विद्यालयीन पाठ्यचर्या में अधिगम का एक नया क्षेत्र है। एक बहुलतावादी संस्कृति और राष्ट्रों के बीच परस्पर निर्भरता के सन्दर्भ में राष्ट्रीय विकास को देखते हुए, सभी समाजों में 'शान्ति' के लिए शैक्षिक इनपुट्स उपलब्ध कराने के लिए सचेतन प्रयासों की जरूरत बढ़ गई है। एनसीएफ-2005 जोर देती है कि अधिगम के ये क्षेत्र आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत विकास के लिए आधारभूत महत्त्व के हैं। यह इस बात को भी स्वीकार करती है कि विद्यालय आत्मनिर्भरता, साधन-सम्पन्नता, शान्ति-परक मूल्यों, और स्वास्थ्य की एक संस्कृति में बच्चों का समाजीकरण करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

विद्यालयीन पाठ्यचर्या के सभी चार परिचित क्षेत्रों में, अर्थात भाषा, गणित, प्राकृतिक विज्ञान, और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों में, शिक्षा को वर्तमान और भविष्य दोनों की आवश्यकताओं के

लिए अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की सिफारिशें की गई है। इसके अलावा, उस लगातार बढ़ रहे तनाव को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रस्तावित पाठ्यचर्या अध्ययनों में ठोस उपाय सुझाए गए हैं, जिसका सामना करने के लिए वर्तमान में बच्चों को बाध्य किया जाता है।

एनसीएफ-2005 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अनेक और लचीले विकल्प उपलब्ध कराने के महत्त्व पर प्रकाश डालती है। यह बच्चों को निश्चित धाराओं में धकेलने और बच्चों के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए, अवसरों को सीमित करने की गहरी जड़ें जमाई हुई प्रवृत्तियों की समीक्षा करती है।

अधिगम और ज्ञान : पाठ्यचर्या अधिगम के माध्यम से ज्ञान के प्रति दृष्टि

एनसीएफ-2005 में वर्णित पाठ्यचर्या में ज्ञान के प्रति दृष्टि के बारे में कुछ सिद्धान्त नीचे दिए गए हैं।

- विषयवस्तु द्वारा उपलब्ध कराई गई दृष्टियों के माध्यम से सामाजिक वास्तविकता और प्राकृतिक वातावरण के विषय में एक आलोचनात्मक नजरिया प्राप्त करना।
- ज्ञान की जगह तय करने और उसकी 'प्रासंगिकता' और 'सार्थकता' समझने के उद्देश्य से स्थानीय और सन्दर्भित के साथ जुड़ना, विद्यालय के बाहर के अपने अनुभवों की पुष्टि करना; परिवेश में होने वाली घटनाओं के अवलोकन के जरिए खुद सीखना, दूसरों के साथ परस्परक्रिया करना, अवलोकनों और परस्परक्रिया के परिणामों का वर्गीकरण और श्रेणीकरण करना; और इन अनुभवों को लेकर प्रश्न करना, दलील देना और औचित्य विचार करना।
- विषयों के बीच सम्बन्ध बनाना, और ज्ञान के सभी क्षेत्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को सामने लाना।
- जाँच-पड़ताल की 'फलदायकता' और 'खुलेपन' को और 'सत्य' की अस्थाई प्रकृति को समझना।
- स्थानीय क्षेत्र में 'स्थानीय ज्ञान' और देशज प्रथाओं के साथ जुड़ना, और जहाँ भी सम्भव हो, इसे विद्यालयीन ज्ञान के साथ जोड़ना।
- प्रश्नों को प्रोत्साहित करना और नए प्रश्नों की खोज के लिए गुंजाइश खुली रखना।
- कक्षा के व्यवहार में 'समानता' को लेकर और स्थापित रूढ़-छवियों एवं विभिन्न समूहों की ज्ञान क्षेत्रों की 'सीखने की क्षमता' के बारे में भेदभाव के रूपों को लेकर संवेदनशील होना

(जैसे लड़कियों को फील्ड-आधारित परियोजनाएँ नहीं दी जाती हैं, दृष्टिबाधितों को गणित का अध्ययन करने के प्रति हतोत्साहित किया जाता है, आदि।))।

- बच्चे की कल्पना और सपने देखने और ख्याली दुनिया बनाने की क्षमता को विकसित और प्रोत्साहित करना।

पाठ्यचर्या संयोजन

हालाँकि विभिन्न चरणों में विद्यालयीन शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या सम्बन्धी निविष्टियों (इनपुट्स) के संयोजन में आठ विशिष्ट क्षेत्रों की अनुशंसा की गई है, लेकिन इस बात पर प्रकाश डाला जाना चाहिए कि एनसीएफ-2005 विभिन्न विषयों के बीच के पारस्परिक सम्बन्ध पर जोर देते हुए शैक्षिक प्रक्रिया का समग्र दृष्टिकोण अपनाती है। इसी तरह, एनसीएफ-2005 यह स्वीकार करती है कि जानने और समझने के स्रोत विद्यालय परिसर से परे मौजूद होते हैं। यही कारण है कि एनसीएफ-2005 ठोस सन्दर्भ में चर्चा करने के लिए काफी मौका देती है कि कैसे परिवार और समुदाय के माध्यम से समाजीकरण विद्यालयीन शिक्षा प्रक्रिया का हिस्सा हैं, और इसीलिए यह माता-पिता, गैर-सरकारी संगठनों, नागरिक समाज, और अन्य समूहों एवं व्यक्तियों की तरह-तरह की अधिक-से-अधिक सहभागिता सम्भव बनाने के तरीकों की सिफारिश करती है। इसे व्यापक रूप में देखने पर, जैसा कि एनसीएफ-2005 करती है, शिक्षा की पूरी प्रक्रिया विद्यालय के भीतर और बाहर फैली दिखाई दे सकती है। फिर भी, इस बात की सराहना करने की आवश्यकता है कि एनसीएफ-2005 अनेक अन्य अवधारणाओं और प्रक्रियाओं को विद्यालयीन शिक्षा के लिए बहुत बुनियादी मानते हुए अपनाती है। उदाहरण के लिए, बच्चा एक स्वाभाविक शिक्षार्थी होता है; उसका अपना परिवेश ज्ञान को आत्मसात करने के लिए सन्दर्भ प्रदान करता है; वह ज्ञान की व्याख्या कर सकता है और अपने अनुभव को ताज़ा कर सकता है, और इस प्रकार खुद के लिए ज्ञान अर्जित कर सकता है। इसी तरह, समुदाय के सदस्य और समूह और उनके संगठन शिक्षा में हितधारक हैं। इसलिए, शिक्षा में उनकी सहभागिता प्रासंगिक और जरूरी है, और इसके लिए सचेतन कोशिश करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, शिक्षा-विज्ञान सम्बन्धी निर्णय लेते समय और उनके आधार पर उभरने वाली गतिविधियों के संयोजन में अन्य क्षेत्रों की बहुत-सी प्रणालीगत विशेषताओं का विधिवत ध्यान रखा जाना चाहिए, जैसे कि देश में विकेन्द्रीकृत शासन प्रणाली- राष्ट्रीय स्तर से लेकर स्थानीय निकायों तक संघीय ढाँचा। इसके अलावा, जिन स्रोतों में शिक्षात्मक

क्षमता है, संगठित प्रयासों के माध्यम से उनके इस्तेमाल की आवश्यकता है, ताकि उनका उपयोग अधिक-से-अधिक किया जा सके।

इस खण्ड में एक प्रक्रिया के रूप में स्कूली शिक्षा की विशेषताओं को उजागर करने और इसके बरक्स इसकी गुणवत्ता में सुधार पर मुख्य रूप से जोर दिया गया है। इस बात का ध्यान तभी रखा जा सकता है कि जब 'ज्ञान' को व्यावहारिक रूप में लिया जाए; बच्चा इसे रच सके, जिसके लिए उसके पास एक स्वाभाविक प्रवृत्ति और रचनात्मक सम्भावित क्षमता होती है। दूसरा, ज्ञान प्राप्ति और इसके विकास के सन्दर्भ में शिक्षार्थी की मदद करने के लिए पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया को इसके 'आलोचनात्मक पहलू पर जोर देते हुए उपयुक्त रूप से प्रतिपादित किया गया है। सहवर्ती रूप से, पाठ्यचर्या और इसके कार्यान्वयन से सम्बन्धित व्यवस्था प्रभावी रूप से जुड़ जाती है और शिक्षार्थी के विकास के लिए सामूहिक रूप से योगदान करती हैं। इस प्रकार, पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया को उचित सह-संयोजनों के साथ देखा और व्यवस्थित किया जाना चाहिए, जिससे प्रणालीगत प्रभावशीलता बढ़ सके।

एनसीएफ-2005 इन सभी विचारों को सामने रखती है, जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, और ठोस गतिविधियाँ भी सुझाती हैं, जिन्हें व्यापक, एकीकृत और परस्पर-सम्बद्ध प्रक्रिया निर्मित करने के लिए शिक्षा के अमले द्वारा पूरे किए जाने की आवश्यकता है। यह इस बुनियादी मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा की गुणवत्ता और इसके पाठ्यचर्या सम्बन्धी इनपुट को प्रणालीगत विशेषता के रूप में देखा जाए। इसलिए गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा प्रणाली को प्रभावी ढंग से काम करना चाहिए।

गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए, एनसीएफ-2005 शिक्षात्मक प्रक्रिया की तीन मुख्य प्रणालियों, यानी, शिक्षक-प्रशिक्षण, परीक्षा और शिक्षा में नवाचारी प्रथाओं को अपनाने वाले संस्थानों से सम्बन्धित कुछ उपाय प्रस्तावित करती है। एनसीएफ-2005 इन प्रणालियों के विशिष्ट पहलुओं की पहचान करती है, जिनमें तत्काल परिवर्तन की आवश्यकता है, यह परिवर्तन लाने के लिए ठोस समाधान और रास्ते सुझाती है, और सम्बद्ध मुद्दों और कार्रवाई की दिशा पर चर्चा करती है।

एनसीएफ-2005 की ये विशेषताएँ, और पाठ्यचर्या विकास और कार्यान्वयन के लिए इसका सुस्पष्ट दृष्टिकोण, इसे पहले की पाठ्यचर्या रूपरेखाओं से स्पष्ट रूप से अलग करते हैं।

6. समापन टिप्पणियाँ

मौजूदा समीक्षा के अन्त में, निम्नलिखित कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा।

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में, विद्यालयीन शिक्षा के व्यवस्थित और व्यापक पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ उभर कर सामने आई। पहली अवधारणा विद्यालयीन ज्ञान और शिक्षा के विभिन्न चरणों में इसके क्रमिक फैलाव से सम्बन्धित थी। इसने विद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या पर ध्यान केन्द्रित किया और इसमें समय-समय पर संशोधन और समीक्षा को अनिवार्य बना दिया। दूसरी अवधारणा संगठनात्मक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित थी, जिसका उद्देश्य विद्यालयीन शिक्षा के प्रणालीगत और कार्यान्वयन से जुड़े पहलुओं में सुधार लाना था। इसने राष्ट्रीय स्तर पर शीर्ष संस्थानों और राज्य स्तर पर उनके समकक्ष संस्थानों के महत्त्व पर प्रकाश डाला। दोनों स्तरों पर इन संस्थागत संरचनाओं से अपेक्षा की गई थी कि वे अपने बीच और सम्बद्ध संगठनों के बीच उचित सम्पर्क व जुड़ाव के साथ शैक्षिक ताने-बाने या नेटवर्किंग की एक प्रणाली निर्मित करें।

   शिक्षा में इन अवधारणाओं का इस शब्दावली के तहत कार्यान्वित किया गया है : (i) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, और (ii) संस्थागत संरचनाएँ जिसमें एनसीईआरटी और राज्यों में इसके समकक्ष संस्थाएँ, जैसे कि एससीईआरटी शामिल हैं। इन संरचनाओं ने शैक्षिक पुनर्निर्माण के कार्य में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेषकर विकेन्द्रीकृत प्रबन्धन और शिक्षा के विकास के उपाय लागू किए जाने के बाद। प्रासंगिक संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से यह किया गया था, जिसमें केन्द्र और राज्यों के बीच 'सार्थक साझेदारी' के संचालन को अनिवार्य बना दिया गया।[34]

   सन 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 और कार्य योजना-1986, में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा को शिक्षा प्रणाली के आधुनिकीकरण के साधन के रूप में परिकल्पित किया गया।[35]

2. स्वतंत्रता संग्राम के मूल्यों व प्रेरणाओं (ethos) ने राष्ट्रीय शिक्षा की एक 'दृष्टि' को जन्म दिया, जो सामाजिक परिवर्तन की जरूरतों और चुनौतियों के प्रति जवाबदेह हो सकेगी। भारतीय संविधान (1950) और उसके बाद के संशोधनों ने शिक्षा और इसकी प्रक्रियाओं के

पुनर्निर्माण के लिए अधिक पैनी दृष्टि प्रस्तुत की। इन्होंने पाठ्यचर्या और शिक्षा के अन्य पहलुओं के सम्बन्ध में नीति निर्माण के दिशा-निर्देशों के रूप में काम किया।

शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 ने शैक्षिक विकास के मापदण्डों की अवधारणा को और अधिक ठोस रूप में प्रस्तुत किया, जिन्हें लागू करना आसान था। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 शिक्षा को लोगों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से जोड़ने के लिए और शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाने के लिए एक मूलभूत मापदण्डीय साधन बन गई।

दस वर्षीय विद्यालयीन पाठ्यचर्या ने निम्नलिखित शब्दों में इस विचार पर प्रकाश डाला: "इस उद्देश्य के लिए, विद्यालयीन पाठ्यचर्या का सम्बन्ध राष्ट्रीय एकीकरण, सामाजिक न्याय, उत्पादकता, समाज और सभ्यता के आधुनिकीकरण और सामान्य और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास से होना चाहिए"।[36]

इसके बाद, 1970 के दशक के उत्तरार्ध में, विद्यालयीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा और इसके कार्यान्वयन पर अविलम्ब अधिक ध्यान दिया गया। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यवसायीकरण, इस स्तर पर छात्रों को एक धारा से दूसरी धारा में जाने की अनुमति के साथ अकादमिक और व्यावसायिक धाराओं के लिए अध्ययन की एक लचीली योजना थी, और विभिन्न चरणों में कार्य अनुभव के अवसर ने विद्यालयीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा निर्धारित करने और कार्यान्वित करने के वास्तविक आयामों से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया। शिक्षा के ये आयाम सामान्यतः शिक्षा पर होने वाले विमर्श और साथ ही शिक्षा, उसकी प्रकृति और संगठन के बारे में नए प्रश्न उठाने वाले विशिष्ट मुद्दों का एक अभिन्न भाग बन गए। इसने पाठ्यचर्या और इसके कार्यान्वयन के प्रति दृष्टिकोण के सम्बन्ध में विमर्श को अधिक व्यापक आधार प्रदान किया। 1978 में केन्द्र में सरकार बदलने के परिणामस्वरूप राजनीतिक माहौल में परिवर्तन के कारण यह अधिक दृश्यमान हो गया। नतीजतन, दस वर्षीय विद्यालय और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा व इसके व्यवसायीकरण के लिए पाठ्यचर्या को दो औपचारिक समितियों के सम्मुख समीक्षा के लिए रखा गया।[37] इन समीक्षाओं के कारण पाठ्यचर्या योजनाओं में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, शिक्षा के लिए नए उन्मुखीकरण के अनुरूप कुछ अवधारणाओं को भी बदल दिया गया था, जैसे, ईश्वरभाई पटेल समिति ने कार्य अनुभव के स्थान पर सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य (एसयूपीडब्ल्यू) को रख दिया था।[38]

आदिशेषैया समिति ने शैक्षणिक और व्यावसायिक, इन दो धाराओं के आर-पार आवाजाही के अधिक बिन्दुओं के रूप में अधिक लचीलेपन की माँग की।

कुछ समय बाद, 1979 में, राममूर्ति समिति ने पाठ्यचर्या में नए अवधारणात्मक परिवर्तन प्रस्तुत किए। इससे एक नया राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1979 मसौदा तैयार हुआ, जिसने शिक्षा की प्रणालियों को देखने के कुछ नए तरीके सामने रखे। उदाहरण के लिए, राममूर्ति समिति नवोदय विद्यालय शालाएँ खोलने को लेकर बहुत उत्साहित नहीं थी और उसने अनुशंसा की कि कोई भी नए नवोदय विद्यालय नहीं खोले जाएँ। हालाँकि, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1979 के संसद द्वारा अपनाए जाने से पहले ही सरकार बदल जाने के कारण यह एक मसौदा नीति ही बनी रही। ये दस्तावेज़ 1978-80 में देश में राजनीतिक दृश्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप शिक्षा की अवधारणाओं और कार्यक्रमों को लेकर नजरिए में आए परिवर्तन को प्रकट करते हैं।

कुछ लोगों ने इन परिवर्तनों को तत्कालीन सत्तारूढ़ गठबन्धन सरकार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दर्शन से जोड़ने की कोशिश की, जो वैचारिक रूप से असम्बद्ध अनेक राजनीतिक झुकावों का प्रतिनिधित्व करती थी।

3. 1986 में, जब नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति जारी की गई थी, प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का प्रारम्भिक मसौदा पहले से ही अपने अन्तिम रूप में था। इसलिए, मसौदे को राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 द्वारा सुझाए गए पाठ्यचर्या इनपुट्स और पेडॅगोजि की प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए संशोधित किया जाना था, ताकि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के माध्यम से इसे कार्यान्वित किया जा सके। यह इनपुट्स, जैसी कि पहले चर्चा की गई थी, मुख्यतः निम्नलिखित से सम्बन्धित हैं :

- शिक्षा के जरिए विकास के सामान्य दर्शन के एक निर्णयकर्ता के रूप में स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार।
- शिक्षा के लक्ष्य के रूप में सर्वांगीण विकास।
- स्वयं की खोज और सांस्कृतिक बहुलता को बढ़ावा देना।
- पाठ्यचर्या की रूपरेखा से जुड़ा हुआ अधिगम।

एनसीएफईएसई-1988 का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान "सामान्य प्रमुख घटकों" पर जोर देना था। तदनुसार, इसने संविधान में निहित "राष्ट्रीय अखण्डता और सामाजिक एकीकरण और मूल्यों के विकास" के संवर्धन पर पाठ्यचर्या सम्बन्धी प्रयासों को केन्द्रित करने के लिए एक मजबूत तर्क प्रस्तुत किया। इसने "राष्ट्रीय रूप से साझा धारणाओं एवं मूल्यों की शिक्षा देने और एक लोकाचार

एवं मूल्य प्रणाली के विकास" की आवश्यकता पर जोर दिया, जो "साझी भारतीय पहचान" को मजबूती प्रदान करेगी।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के बाद की अवधि में, विशेष रूप से 1990 के दशक की शुरुआत में, प्राथमिक शिक्षा, विशेष रूप से इसकी गुणवत्ता और न्यायसंगतता के आयामों पर विमर्श, बड़े सरोकार का विषय बन गया। यह सरोकार उसी वक्त सामने आया, जब सब के लिए शिक्षा पर जोर दिया जा रहा था, जैसा कि वर्ल्ड कॉन्फ्रेन्स ऑन एजुकेशन फॉर ऑल, जिसे लोकप्रिय रूप से जोम्टीन कॉन्फ्रेंस (1990) के नाम से जाना जाता है, में भी प्रतिबिम्बित हुआ। भारत इस सम्मेलन के प्रस्तावों का एक हस्ताक्षरकर्ता था। आगे की (फॉलोअप) गतिविधियों के विकास में सहायता के लिए, विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को), और संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ) जैसी एजेंसियाँ सभी के लिए शिक्षा कार्यक्रम अपनाने में, विशेषकर विद्यालयीन शिक्षा के प्राथमिक चरण में, भारत के प्रयासों का समर्थन करने के लिए आगे आईं, जैसा कि वे कई अन्य देशों में कर चुकी थीं। इस बारे में, निम्नलिखित बिन्दु ध्यान देने योग्य हो सकते हैं।

   (i) जब अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने भारत में सभी के लिए शिक्षा के कार्यक्रमों के लिए वित्तीय सहायता का प्रस्ताव रखा, तो सीएबीई ने भारत सरकार को सलाह दी कि इस सहायता का उपयोग सिर्फ शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए किया जाए न कि शिक्षकों की नियुक्ति और विद्यालय भवनों के निर्माण जैसी नियमित गतिविधियों के लिए। यह अनुशंसा कार्रवाई के स्तर पर गुणवत्ता की आवश्यकता के बारे में बताती है।

   (ii) 1992 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय सलाहकार समिति की नियुक्ति इसी तरह की गुणवत्ता-सम्बन्धी कार्रवाई के रूप में सामने आई। बच्चे के लिए बस्ते (स्कूल बैग) के भौतिक बोझ से उत्पन्न समस्या की जाँच करते वक्त समिति ने यह पाया कि यह समस्या बच्चे द्वारा नहीं समझने की थी। समिति ने विद्यालय स्तर पर, विशेषकर प्राथमिक स्तर पर, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए कुछ बहुत ही उपयोगी सिफारिशें की, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट 'लर्निंग विदाउट बर्डन' (1993) शीर्षक के तहत प्रकाशित की गई थी।

इस प्रकार, पाठ्यचर्या के बोझ की समस्या एक गम्भीर मुद्दे के रूप में उभरी और इसने उन सभी का ध्यान आकर्षित किया जो पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं सहित पाठ्यचर्या विकास से जुड़े हुए थे। अन्तिम तीन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाओं (1988, 2000 और 2005), विशेष रूप से अन्तिम दो, ने इस समस्या पर गम्भीरता से ध्यान दिया और पाठ्यचर्या सम्बन्धी सरोकारों, इनपुट्स और प्रक्रियाओं के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान किया।

5. एनसीएफएसई-2000 भारतीय ज्ञान प्रणाली, मूल्यों की तुलना में धर्म, और धर्मनिरपेक्षता जैसे विषयों पर केन्द्रित है। इसने विद्यालयीन ज्ञान और पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में भी एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाया। हालाँकि, इन्हें बेढँगे तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, भारतीय ज्ञान प्रणालियों और ज्ञान के क्षेत्र में अन्य देशों द्वारा किए गए योगदान के बीच एक समान्तरता पर जोर दिया गया है।[39] इसके अलावा, एनसीएफएसई-2000 ज्ञान की सार्वभौमिक प्रकृति को रेखांकित नहीं करता है, जो देशों और व्यक्तिगत योगदानकर्ताओं से परे जाती है। यही ज्ञान का वह साझा कोष है, जो दुनिया भर में हुए प्रयासों के माध्यम से मानवता के लिए उपलब्ध है, जिसका उपयोग शिक्षा की एक आधुनिक प्रणाली निर्मित करने के लिए किया जाना है, जैसी कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 द्वारा अनुशंसा की गई है।[40] ऐसा लगता है कि एनसीएफएसई-2000 ने पाठ्यचर्या निर्माण के लिए विद्यालयीन ज्ञान का चयन करने में राष्ट्रवाद और तर्कसंगत विकल्पों को मिश्रित किया है। इसी तरह, यह सभी धर्मों की मूल बातों और उनमें निहित मूल्यों को शामिल करने का समर्थन करती है। यह प्रारम्भिक वर्षों से शुरू कर शिक्षा के यथोचित चरणों में सभी धर्मों के दर्शन के एक तुलनात्मक अध्ययन का भी आह्वान करती है।[41] यह किसी न किसी रूप में धर्मों को विद्यालयीन पाठ्यचर्या का एक अनिवार्य हिस्सा मानती है। हालाँकि, यह भारत के संविधान की बुनियादी विशेषताओं और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 से उत्पन्न होने वाले मुद्दों पर कोई चर्चा नहीं करती है, जैसे कि यह तथ्य कि एक राष्ट्र-राज्य के रूप में भारत का कोई आधिकारिक राजकीय धर्म नहीं है और संविधान के एक बुनियादी मूल्यगत आधार के रूप में धर्मनिरपेक्षता यह माँग करती है कि सभी मूल्य उसके अनुरूप हों। इसके अलावा, मूल्यों के निर्णयकर्ता के रूप में धर्म पर अत्यधिक बल दिया गया है। एक राज्य-प्रायोजित शिक्षा प्रणाली में शामिल किए जाने वाले मूल्य भारत के संविधान से नि:सृत हैं, जो देश के स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार पर

आधारित हैं और जिसे जाति, पन्थ और धर्म पर ध्यान दिए बिना सभी सामाजिक समूहों ने सामूहिक रूप से साझा किया है। यह लोकाचार ही भारतीय लोगों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे संविधान में मूर्त रूप दिया गया है। इस प्रकार धर्म राष्ट्र के लिए मूल्यों का निर्णयकर्ता होने के बजाय मूल्य विकास की प्रक्रिया में व्यक्तिगत स्तर पर योगदान देने वाला कारक है।

इसके अलावा, एनसीएफएसई-2000 ने नैतिक घटक को अति आवश्यक मानते हुए सभी मूल्यों में इस पर अत्यधिक जोर दिया है। हालाँकि, मूल्यों का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक है। नैतिकता और आचारसंहिता के इस अतिरेक ने उन मूल्यों के महत्त्व को कम कर दिया, जिनमें ये विशेषताएँ कुछ कम अंश में मौजूद होती हैं, हालाँकि वे शैक्षिक दृष्टिकोण से अत्यन्त प्रासंगिक हो सकते हैं, जैसे वस्तुनिष्ठता, तर्कसंगतता, समयनिष्ठता, वैज्ञानिक स्वभाव, शान्ति, सहयोग आदि।

ऐसा लगता है देशज ज्ञान, धर्म के अध्ययन और मूल्य चयन में इसके महत्त्व, और एक अवधारणा के रूप में मूल्यों की इस विरूपित तस्वीर ने अन्य संस्कृति-सम्बन्धी मामलों के साथ उस भावना, जिसके साथ इन्हें इस दस्तावेज में निरूपित क्या गया है और उस भावना के बीच एक खाई पैदा कर दी है, जिसकी संकल्पना राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में की गई है। ऐसी महसूस की गई खाई ने एनसीएफएसई-2000 में स्पष्ट की गई शिक्षात्मक प्रक्रिया को विवादास्पद बना दिया। इसने आलोचकों को 'भगवाकरण' को बढ़ावा देने का आरोप लगाने का मौका प्रदान किया।

एनसीएफएसई-2000 पर प्रिण्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, दोनों में उग्र बहस ने विवाद को इस हद तक बढ़ा दिया कि मामला एक जनहित याचिका के जरिए सर्वोच्च न्यायालय के सामने ले जाया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने इन दलीलों को स्वीकार नहीं किया कि नीति दस्तावेज एनसीएफएसई-2000 को विकसित किए जाने में कानूनी प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है, और 12 सितम्बर 2002 को जनहित याचिका को खारिज कर दिया। जहाँ तीन न्यायाधीशों ने संयुक्त रूप से सहमति का फैसला सुनाया और जनहित याचिका को खारिज कर दिया, वहीं, दो न्यायाधीशों ने अपने अलग-अलग निर्णयों में कुछ अवलोकन प्रस्तुत किए, जो शैक्षिक रूप से महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय शिक्षा में नीति निर्माण के सम्बन्ध में न्यायपालिका और कार्यपालिका के कार्रवाई क्षेत्रों का स्पष्ट रूप से सीमांकन करता है। यह नीतिगत मामलों में उचित निर्णय लेने के लिए

सरकार की सहायता करने में विशेषज्ञों और शिक्षाविदों की भूमिका पर भी जोर देता है। साथ ही, निर्णय स्पष्ट रूप से कहता है कि नीति निर्माण से सम्बन्धित विषयवस्तु और मुद्दों पर अकादमिक सदस्यों और शिक्षाविदों के साथ बातचीत शुरू करने की जिम्मेदारी सरकार की है, जो वर्तमान मामले में एनसीएफएसई-2000 है।

शिक्षा - इसकी प्रकृति और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करने जैसी प्रक्रियाओं - को इस दृष्टिकोण से देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक बहुत ही नाजुक प्रक्रिया है। इसका अस्तित्व लोगों की आस्था, आत्मविश्वास और अव्यक्त समझ पर निर्भर रहता है। यहाँ तक कि सरकार की कार्यकारी शक्तियाँ भी शैक्षिक प्रक्रिया निर्मित करने और उनका कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त रूप से समर्थ नहीं हैं। शिक्षा मूल रूप से एक समाजशास्त्रीय प्रक्रिया है, जिसकी उन सभी लोगों को लगातार समीक्षा करनी होती है, जो इसकी कुशल-क्षेम और समाज के लिए व्यापक रूप से इसकी प्रासंगिकता की परवाह करते हैं। इन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के एक सामान्य दर्शन की रोशनी में सामाजिक विकास की समकालीन समस्याओं पर ध्यान देना होता है। यह कवायद देश की सांस्कृतिक विरासत, इसकी समकालीन समस्याओं और शिक्षा के जरिए भावी विकास की दृष्टि जैसे मुद्दों को एक ऐसे सन्दर्भ में रखती है, जो मूल रूप से शिक्षा के परिप्रेक्ष्य से आकार ग्रहण करता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभरे और सभी शैक्षिक कार्रवाइयों पर प्रभाव डाले, शिक्षा को लेकर एक समुचित विमर्श और बहस को प्रोत्साहित और समर्थित करना महत्त्वपूर्ण है। यह शिक्षा के महत्त्व और उद्देश्य को – इसकी सभी जटिलताओं, इसके व्यवस्थागत अन्तर्सम्बन्धों के साथ, और लोगों की भागीदारी द्वारा समर्थित – एक ऐसी मानवीय कोशिश के रूप में समझने में लोगों की मदद करेगा, जिसका उद्देश्य शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक साधन बनाना है।

6. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 एक ऐसी विद्यालयीन पाठ्यचर्या की संकल्पना करती है जो शिक्षा की सामाजिक तबदीली के एक साधन के रूप में अवधारणा से पैदा होने वाले सरोकारों पर ध्यान देती हो। इस मकसद से, यह शिक्षा के एक सिद्धान्त, मुख्य रूप से पेडॅगोजि को निरूपित करती है। यह विद्यालयीन ज्ञान के महत्त्व और बच्चे की सहभागिता और अधिगम के लिए आवश्यक पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करती है। एनसीएफ-2005 इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दुओं पर बल देती है।

बच्चा रचनात्मक प्रवृत्ति वाला एक स्वाभाविक शिक्षार्थी होता है और इसलिए उसमें ज्ञान का सृजन करने की सम्भावित क्षमता होती है। उसका यह ज्ञान अपने पर्यावरण की अर्थपूर्ण समझ के रूप में होता है। इस तरह की समझ उसके आस-पास की दुनिया में उसकी सक्रिय सहभागिता और अनुभवों का परिणाम होती है, जो आवश्यक रूप से विद्यालय के बाहर भी उसके जीवन से जुड़ी हुई होती है। बच्चे का अधिगम इस विस्तारित क्षेत्र से जुड़ा होता है। यह बच्चे के अनुभवों और अधिगम के लिए एक सन्दर्भ के रूप में कार्य करता है।

इस व्यापक क्षेत्र के भीतर, एक सीखने का वातावरण निर्मित किया जाता है, जिसमें शिक्षक की भूमिका आधारभूत होती है और शिक्षार्थी की सक्रिय सहभागिता अनिवार्य होती है। इसमें शिक्षक की भूमिका इसलिए निश्चायक है, क्योंकि उसे यह सुनिश्चित करना होता है कि बच्चे के लिए सीखने का वातावरण विभिन्न गतिविधियों और कार्यों में उसकी सहभागिता को प्रोत्साहित करे, इस तरह सार्थक समझ के लिए उसकी क्षमता बढ़ाए। अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग तरह के संसाधन और स्थितियाँ होने के कारण, इस प्रकार निर्मित सीखने का वातावरण अलग-अलग तरह का होगा। इसलिए यह 'अवस्थित सीखने' (situated learning) की तरफ ले जाएगा। यह बच्चे के सीखने के विकास के लिए एक और महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ है।

जहाँ बच्चे का सीखना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, वहीं उद्देश्य यह होता है कि इसे एक 'शिक्षाप्रद प्रक्रिया' में बदला जाए। इस व्यापक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, एनसीएफ-2000 'मार्गदर्शक सिद्धान्त' प्रस्तुत करती है, जिनका पालन एक पेशेवर रूप से प्रशिक्षित शिक्षक को शिक्षार्थियों को उपयुक्त गतिविधियों और अनुभवों में संलग्न करते हुए उनके लिए सीखने का वातावरण निर्मित करने के लिए करना चाहिए। उदाहरण के लिए, एक लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के बारे में ज्ञान सीखने के वातावरण के निर्माण में मदद करेगा। इसी तरह, बच्चों द्वारा चिन्तन किए जाने को बढ़ावा देने के माध्यम से 'स्थानीय ज्ञान' के नाम पर प्रचलित 'रूढ़िवाद' और दमनकारी सामाजिक प्रथाओं को शैक्षिक ज्ञान में बदला जाएगा। इसके लिए, शिक्षक को अपनी एक 'नैतिक अधिकारी' वाली भूमिका को छोड़ना होगा और इसके बजाय बच्चों को गैर-नकारात्मक रूप से और हमदर्दी के साथ सुनना होगा, और बच्चों को खुद एक-दूसरे को सुनने और सोचने में सक्षम बनाना होगा। सीखने का वातावरण निर्मित करने और छात्रों एवं शिक्षकों की उचित तरीके से सहभागिता सुनिश्चित

करने के लिए यह शिक्षा में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ के रूप में 'शिक्षा की सोद्देश्यता' पर ध्यान केन्द्रित करता है।

इसलिए, संस्थागत विद्यालयीन शिक्षा के माध्यम से, अर्थात पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के माध्यम से सीखना, बच्चों को बिलकुल शुरुआत से शिक्षित करना है। उस अर्थ में, पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के माध्यम से सीखना महज सीखना ही नहीं है; इसमें इरादतन चुने गए वे प्रभाव शामिल हैं, जो बच्चों पर डाले जाने होते हैं। इस प्रकार किसी भी विषय के अधिगम में व्यवहारगत उन्मुखीकरण और मूल्यों का विकास शामिल हैं, जो शिक्षा के लक्ष्यों के अनुरूप होते हैं। इसलिए, पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया के माध्यम से सीखना वह है, जिसे 'सीखने लायक' माना गया है। ऐसे सीखने में मानदण्ड सम्बन्धी आयाम जैसे 'सामाजिक सोद्देश्यता' और अन्य विचार शामिल हैं, जो राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के बारे में सामान्य दर्शन से उभरते हैं। इस अर्थ में, पेडॅगोजि की सामग्री और अवधारणाएँ बहु-आनुशासनिक या बहु-विषयक प्रकृति की होती हैं। यह सीखने-सिखाने का वह पहलू है, जिसे एनसीएफ-2005 में निर्माणवाद (constructivism) के सिद्धान्त के साथ व्यक्त किया गया है।

निर्माणवाद के सिद्धान्त के अनुसार, बच्चा चीजें करने, प्रश्न पूछने, खोज में लगने, और अपने ज्ञान को साझा एवं एकीकृत करने की प्रक्रियाओं में संलग्न होकर सीखता है। इस तरह की एक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप होने वाला सीखना अनुभव और सन्दर्भ के आधार पर ज्ञान के निर्माण के माध्यम से होता है। सैद्धान्तिक रूप से, इस तरह के सीखने को एक मनोवैज्ञानिक गढ़ंत (construct) की मदद से समझाया जा सकता है - 'सृजन या निर्माण करने की सृजनात्मक सम्भावित क्षमता'। यहाँ इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह सीखना व्यवस्थित रूप से गढ़ी गई और नियंत्रित प्रक्रिया के माध्यम से नहीं होता है जैसा कि सक्रिय (operant) और शास्त्रीय (classical) अनुकूलन जैसे सीखने के व्यवहारवादी सिद्धान्तों में किया जाता है। इन सिद्धान्तों में, सीखने के उद्भव का स्पष्टीकरण 'सीखने की क्षमता' या बुद्धिमत्ता के मनोवैज्ञानिक गढ़ंत पर आधारित होता है।

एनसीएफ-2005 बच्चे के लिए सीखने के वातावरण और अनुभवों के संयोजन के निर्माणवादी दृष्टिकोण, और एक लचीली प्रक्रिया के निर्माण पर जोर देता है, जिसमें वह सक्रिय रूप से भाग लेता है और जिसमें बच्चा स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है। बच्चे के

सृजनात्मक अनुभवों को सुगम बनाने के लिए इस तरह के लचीले वातावरण का निर्माण करने के लिए एनसीएफ-2005 शिक्षक-प्रशिक्षण, परीक्षा और संगठनात्मक व्यवस्था जैसे अन्य प्रणालीगत सुधारों का सुझाव देती है। इस प्रकार, शिक्षा की गुणवत्ता और इसकी प्रक्रियाओं को व्यक्तिगत शिक्षार्थी और शिक्षक सम्बन्धी विशेषताओं तक ही सीमित रखने के बजाय एक अधिक व्यापक सन्दर्भ में एक प्रणालीगत विशेषता के रूप में देखा जाना चाहिए।

पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के संयोजन के लिए इस तरह का एक समग्र सन्दर्भ यह सुनिश्चित करेगा कि बच्चे के जीवन के अनुभवों को उसके विद्यालय के अनुभवों से सम्बद्ध करने में देश में विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्राप्त होने वाले 'स्थानीय ज्ञान' को एक आधार के रूप में लिया जाए। इस प्रक्रिया को पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया से उपजी माँगों द्वारा आकार दिया जाता है और इस तरह अनुकूलित किया जाता है कि यह उन माँगों की पूर्ति कर सके। एक प्रमुख माँग शिक्षा के उद्देश्यों से उभरती है; इसका उल्लेख एनसीएफ-2005 में "व्यापक और चिरस्थायी मानव आकांक्षाओं और मूल्यों की समकालीन और प्रासंगिक अभिव्यक्ति" के रूप में किया गया है। यह वह सरोकार है, जिस पर कक्षागत अनुभवों को आकार देते समय शिक्षकों और अन्य लोगों द्वारा योजनाबद्ध रूप से विचार किए जाने की जरूरत है। इसलिए, एनसीएफ-2005 में जिस पेडॅगोजि की वकालत की गई है वह महज कोई भी पेडॅगोजि न होकर 'आलोचनात्मक पेडॅगोजि' है। आलोचनात्मक पेडॅगोजि बच्चों के लिए अनुभवों की उपलब्धता सुनिश्चित करने की कोशिश करती है, जिससे 'स्थानीय ज्ञान-सम्बन्धी इनपुट्स' पर चिन्तन को बढ़ावा मिले और जो उन्हें अपने अनुभवों की छानबीन करने में सक्षम बनाए, ताकि वे ज्ञान की खोज करने के लिए प्रेरित हों जो शिक्षा की 'सामाजिक सोद्देश्यता' के उद्देश्य के अनुरूप हो। 'ज्ञान की रचना' की प्रक्रिया से जोड़ने के लिए 'स्थानीय ज्ञान' की प्रासंगिकता को इसी तरह से देखा जाना चाहिए। इस तरह की पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया का उद्देश्य उसे कायम रखना और बढ़ावा देना है, जो स्थानीय संस्कृति में 'शैक्षिक रूप से मूल्यवान' है, और यह भी सुनिश्चित करना है कि यदि आवश्यक हो, तो स्थानीय ज्ञान को समुचित रूप से संशोधित किया जाए या उसकी पुनर्व्याख्या की जाए, ताकि वह शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप हो सके। अधिक कार्यात्मक सन्दर्भ में, इस तरह का 'स्थानीय ज्ञान' "चिरस्थायी मानव आकांक्षाओं और

मूल्यों" के साथ संरेखित होना चाहिए, जैसा कि भारतीय संविधान और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में अभिव्यक्त किया गया है।

7. शिक्षा का उद्देश्य व्यापक और चिरस्थायी मानव आकांक्षाओं और मूल्यों की समकालीन अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में शिक्षा के निरन्तर पुनर्निर्माण के लिए एक 'दृष्टि' का प्रतिनिधित्व करता है। 'एक राष्ट्रीय शैक्षिक प्रणाली' निर्मित करने का लक्ष्य स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार पर आधारित है, जो भारत के संविधान में संजोया गया है। यहाँ इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि संविधान भारत के समग्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत करता है। व्यापक निर्देश वह दिशा दर्शाते हैं जिसका अनुकरण शैक्षिक विकास, सुधार और पुनर्निर्माण के लिए किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 देश के आर्थिक और सामाजिक जीवन में शिक्षा के माध्यम से सामाजिक विकास के महत्त्व पर विशेष रूप से जोर देती है। इसके अलावा, शिक्षा के माध्यम से विकास का यह दृष्टिकोण लोगों को एक समूह के रूप में बरतता है। यह सभी नागरिकों में सामूहिक रूप से समानता, न्यायसंगतता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था और भाईचारे के बुनियादी मूल्यों के विकास की कोशिश करता है, और अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इन मूल्यों को अमल में लाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करता है। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक विकास की इस प्रक्रिया की गति बढ़ाने और इसे सुगम बनाने की कोशिश अनेक कार्यक्रमों और संविधान में संशोधन के माध्यम से भी की गई हैं। संवैधानिक संशोधनों का उद्देश्य कम विशेषाधिकार प्राप्त (वंचित) लोगों की स्थिति सुधारना, और सामान्य रूप से लोगों के अधिकार और कर्तव्य सुनिश्चित करना था, और इसका शिक्षा पर सुस्पष्ट प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव विभिन्न पाठ्यचर्या रूपरेखाओं और उनके कार्यान्वयन में देखा जाता है।

   यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शैक्षिक विकास की व्यापक नीतियों में काफी ठहराव आ गया है। 1975, 1988 और 2005 में जारी की गई पाठ्यचर्या रूपरेखाओं ने ठोस शब्दों में यह बताने की कोशिश की है कि विद्यालयीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा को किस तरह राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में निर्धारित नीतियों के अनुरूप बनाया जाना और कार्यान्वित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, एनसीएफएसफई-2000 जो कि कुछ संवैधानिक प्रावधानों जैसे धर्मनिरपेक्षता और सीएबीई से परामर्श जैसे अन्य प्रक्रियात्मक तौर-तरीकों के सम्बन्ध में बहस और विवाद का विषय बन गया था - ने

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 की प्रमुख अनुशंसाओं की पुष्टि की है। विद्यालयीन पाठ्यचर्या के भगवाकरण को लेकर हुए विवाद पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और दोनों न्यायाधीशों द्वारा अपने स्वतंत्र निर्णयों में जारी टिप्पणियों और तदनुसार निर्देशों के जरिए भी विराम लगाया गया है। हालाँकि, ये निर्देश कानूनी रूप से महत्त्वहीन लग सकते हैं, हम मानते हैं कि उनमें महान 'शिक्षात्मक तत्व' हैं, जिससे राज्य व्यवस्था और शिक्षाविदों व विशेषज्ञों, दोनों को लाभ हो सकता है। यह आशा की जाती है कि इन निर्देशों का शिक्षा सम्बन्धी विमर्श पर कुछ प्रभाव पड़ेगा, और इनसे शिक्षा के क्षेत्र में नीति-निर्माता शिक्षा की प्रकृति और उसकी सामग्री के प्रति अधिक संवेदनशीलता विकसित करने के लिए भी प्रोत्साहित होंगे, जो नाजुक और संवेदनशील हैं, और फिर भी सामाजिक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि एक मानवीय उद्यम के रूप में शिक्षा को व्यापक रूप से समुदाय की आस्था, भरोसे और सहायता के साथ सामूहिक रूप से परिकल्पित करना होगा, उसे आकार देना होगा, और कार्यान्वित करना होगा।

8. इस शोधपत्र में जिन चार पाठ्यचर्या रूपरेखाओं की समीक्षा की गई है, उनमें से एनसीएफएसई-2000 विद्यालयीन शिक्षा में 'बुनियादी लोकाचार' और पाठ्यचर्या गतिविधि के बीच सम्बन्ध जोड़ने के मामले में एक विशिष्ट स्थान रखती है। एनसीएफएसई-2000 "भारतीय परम्परा और लोकाचार" को बुनियादी मानती है और तदनुसार पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करती है। हालाँकि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा मूल रूप से एक समाजशास्त्रीय प्रक्रिया है और इसकी जड़ें किसी भी समाज की संस्कृति और मूल्यों में दृढ़ता से जमी होती है, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 शिक्षा की एक आधुनिक प्रणाली के निर्माण को एक बुनियादी लक्ष्य के रूप में स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, तीन अन्य पाठ्यचर्या रूपरेखाएँ यह तय करने में कि विद्यालयीन पाठ्यचर्या में क्या शामिल किया जाना चाहिए 'मानवीय आकांक्षाओं और चिरस्थायी मूल्यों की भूमिका' पर जोर देती हैं। इस उद्देश्य के लिए, यह तय करने के लिए कि विद्यालयीन पाठ्यचर्या में क्या शामिल किए जाने योग्य है, महत्त्वपूर्ण कसौटी यह है कि विद्यालयीन ज्ञान की सामग्री, मूल्यात्मक शिक्षा, और पाठयक्रम प्रक्रियाओं को संविधान में निहित 'मूल्यों' और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के अनुरूप होना चाहिए। यही कारण है कि इन पाठ्यचर्या रूपरेखाओं, विशेष रूप से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 ने 'आलोचनात्मक पेडॅगोजि' पर जोर दिया है, ताकि छात्रों द्वारा उन विगत प्रथाओं पर

पुनर्विचार और चिन्तन किया जा सके, जो 'आधुनिक भारत की परिकल्पना' से मेल नहीं खाती हों, इस प्रकार उन्हें देश की प्राचीन संस्कृति, ज्ञान और अन्य सामाजिक प्रथाओं के बारे में अधिक तर्कसंगत समझ प्राप्त करने में समर्थ बनाया जा सके। इसलिए, शिक्षा का उद्देश्य अपने आप में संस्कृति का संरक्षण नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य देश के अतीत में जो कुछ 'सार्थक' है, उसे बनाए रखना है। इस तरह, शिक्षा सतत विकास और संस्कृति के विकास में भी मदद करती है। समकालीन समस्याओं और सरोकारों को हल करने की तत्काल आवश्यकता को देखते हुए इस परिवर्तन को सचेतन रूप से हासिल करने की कोशिश की जाती है। चिरस्थायी मानवीय आकांक्षाओं और मूल्यों की बुनियाद के पैमाने पर इनका मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा अपने आप में संस्कृति का संरक्षण नहीं है, बल्कि यह उन शैक्षिक प्रक्रियाओं के माध्यम से 'संस्कृति का उत्पादन' है, जिन्हें तर्कसंगत रूप से निर्मित किया जाता है। अन्य तीन पाठ्यचर्या रूपरेखाएँ (1975,1988, और 2005), हालाँकि, "स्वतंत्रता संग्राम के लोकाचार" को संरक्षित करने और भारत के संविधान और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में प्रस्तुत "चिरस्थायी आकांक्षाओं और मूल्यों" को बढ़ावा देने की कोशिश करती हैं, और इसलिए ये चार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखाएँ इन्हें सामान्य रूप से शैक्षिक विकास और विशेष रूप से विद्यालयीन पाठ्यचर्या के लिए मूलभूत मूल्यों के रूप में मानती हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में, एनसीएफएसई-2000 भारतीय ज्ञान और अन्य देशों में ज्ञान के बीच समान्तरता देखती है। अन्य तीन पाठ्यचर्या रूपरेखाएँ ज्ञान को मानव रचनात्मकता और पहल के परिणामस्वरूप निर्मित एक सार्वभौमिक कोष के रूप में देखती हैं।

एनसीएफएसई-2000 के ये विशिष्ट पहलू स्पष्ट हो जाते हैं अगर हम इस विनिबन्ध (monograph) में समीक्षित चार पाठ्यचर्या रूपरेखाओं को उनकी प्रमुख विशेषताओं के सन्दर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से देखने की कोशिश करें।

9. शिक्षा की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

   पहली, शिक्षा अध्ययन का एक बहु-अनुशासनात्मक क्षेत्र है। इसकी समस्याओं का अध्ययन बहु-विषयक दृष्टिकोण से किए जाने की आवश्यकता है।

दूसरी, शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से छात्र सीखते हैं। यह प्रक्रिया कार्रवाइयों के रूप में प्रकट होती है - कार्यभार एवं गतिविधियाँ - जिनसे शिक्षण-अधिगम निर्मित होते हैं।

परम्परागत रूप से, एक बहु-अनुशासनिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षात्मक प्रक्रियाओं की संकल्पना निर्मित करने के लिए, अनुशासनिक क्षेत्रों, यानी मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि को शिक्षण-अधिगम के संयोजन के लिए आधारभूत माना गया है। शिक्षण-अधिगम की यह संकल्पना निर्मित होने से शिक्षक की भूमिका और उसमें छात्र की सहभागिता भी स्पष्ट रूप से तय हो जाती है। शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षकों को तैयार करने के लिए इसे मूल आधार के रूप में लिया जाता है। शैक्षिक कार्रवाई सम्भव बनाने के लिए इस तरह के एक बहु-अनुशासनिक परिप्रेक्ष्य को विकसित करने की प्रमुख क्रियाविधि को सम्बन्धित अनुशासनों से प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान के निहितार्थों के सन्दर्भ में देखा गया है। इस प्रकार सामने आए 'निहितार्थों' के समाविष्ट मिश्रण को शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करने, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया निर्मित करने और सीखने को मूल्यांकन के साथ एकीकृत करने के लिए 'आधारभूत इनपुट्स' के रूप में लिया गया है। शिक्षात्मक सम्भावनाओं के साथ आपस में जुड़ी इस तरह की प्रक्रिया मुख्य सरोकार है, जिसे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से संबोधित किया गया है। यह कोशिश मुख्य रूप से सीखने के व्यवहारवादी दृष्टिकोण के आधार पर निम्नलिखित मॉडल को अपनाने के माध्यम से की गई है।

शिक्षा के लक्ष्यों को साकार करने के उद्देश्य से, छात्र की ओर से सीखने को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षण-अधिगम के विज्ञान का उपयोग उपयुक्त 'इनपुट' प्रदान करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार होने वाले अधिगम को 'आउटपुट' माना जाता है, जिसे आमतौर पर छात्र की उपलब्धि कहा जाता है। ऐसी रैखिक आधार पर जुड़ी हुई प्रक्रिया में छात्र की उपलब्धि के पूर्वानुमान को सुनिश्चित करने के लिए इनपुट का व्यवस्थापन और उस इनपुट का नियंत्रण - इनपुट-आउटपुट- की उपलब्धि की खासियत होती है। सभी इनपुट के कार्यान्वयन और इन इनपुट को प्रदान किए जाने की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने के लिए व्यवस्थापन, नियंत्रण, पूर्वानुमान, सत्यापन और पुनरावृत्ति की जरूरत होती है, और इसलिए कार्यान्वयन का कार्य अत्यन्त वैज्ञानिक और व्यवहारिक बन कर उभरता है। योजनाबद्ध अधिगम और अन्य मल्टीमीडिया तरीकों को पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया के संयोजन के लिए

सैद्धान्तिक रूप से उचित तरीके के तौर पर लिया गया है। इस दृष्टिकोण के उत्साही समर्थक मूल्य शिक्षा जैसे लचीले ज्ञान घटकों के सम्बन्ध में भी सीखने के अनुभवों के संयोजन के व्यवहारवादी मॉडलों का उपयोग करना पसन्द करते हैं। इसी तरह, शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पाठ योजना बनाने, शिक्षण पद्धतियों का संयोजन करने, और सूक्ष्म-शिक्षण पद्धतियों आदि के लिए आमतौर पर अपनाए जाने वाले तरीके व्यवहारवादी नजरिए पर आधारित होते हैं।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण का अस्तित्व मुख्य रूप से 'अधिगम वातावरण' और शिक्षक-प्रशिक्षण और परीक्षाओं के संचालन जैसी सम्बन्धित प्रणालियों के संयोजन के लिए एक सिद्धान्त के रूप में बना हुआ है। यहाँ तक कि अगर इन तत्वों में से कोई भी अच्छी तरह से काम नहीं करता, तो भी व्यवहारवादी मॉडल का अस्तित्व बना रहता। शायद इसकी कार्यान्वयन सम्बन्धी सुस्पष्टता और कदम-दर-कदम व्यवस्थापन के साथ ही नियंत्रण, पूर्वानुमान और पुनरावृत्ति जैसी वैज्ञानिक विधि की विशेषताओं के कारण लम्बे समय से शिक्षा के क्षेत्र में यह आकर्षक और स्वीकार्य बना हुआ है। कुछ शिक्षक इस तर्क को खारिज करते हैं कि शैक्षिक वातावरण के निर्माण में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की कुछ 'सीमाएँ' हैं। इसके बजाय वे दावा करते हैं कि शिक्षार्थी की विशेषताओं के परिमाणन और उनके सटीक मापन की मात्रा, और सांख्यिकी की तकनीकों से इस तरह प्राप्त संख्यात्मक डैटा का उपचार जो रैखिकता और जटिल घटनाओं को सूक्ष्म एवं प्रबन्धनीय भागों में तब्दील करने की मान्यता पर आधारित है, एक विचार पद्धति के रूप में व्यवहारवाद में अन्तर्निहित हैं। उनके अनुसार, ये सिर्फ अवधारणाओं या उनकी विशेषताओं के कार्यान्वयन, संख्यात्मक रूप में उनके सटीक और अचूक मापन और विश्लेषणात्मक उपकरणों एवं मॉडलों की उपलब्धता से जुड़े प्रणाली सम्बन्धी मुद्दे हैं। इसके अलावा, उनका मानना है कि इन्हें यथासमय तैयार किया जा सकता है, क्योंकि कोई भी कार्यप्रणाली और उसके उपकरण रचनात्मक पहलों और प्रयासों के साथ विकसित होते हैं।

हालाँकि, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र में लागू व्यवहारवादी मॉडल का उपयोग वास्तव में पेडॅगोजि सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए एक प्रौद्योगिकीय दृष्टिकोण है। इस सन्दर्भ में, यह ध्यान दिलाया जा सकता है कि शैक्षिक प्रक्रिया अनेक आयामों से सम्बन्धित होती है और इनमें से अनेक ऐसे हैं जिन्हें आसानी से प्रौद्योगिकीय कार्यान्वयनों तक सीमित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए शिक्षा का सम्बन्ध

मानदण्ड सम्बन्धी मानकों और मानवीय आकांक्षाओं और मूल्यों से है। इसके अलावा, शिक्षात्मक प्रक्रिया के पेडॅगोजि सम्बन्धी ज्ञान की प्रकृति एक अधिक व्यापक क्षेत्र में फैली हुई है और छात्रों की ओर से सीखने को सुगम बनाने के लिए कई तरीके इसमें शामिल हैं। इसके अलावा, ऐसे ज्ञान सम्बन्धी घटकों को एकीकृत करने और सार्थक बनाने के लिए, शिक्षार्थी की रचनात्मक सम्भावनाओं का समझदारी के साथ उपयोग किया जाना आवश्यक है। प्रक्रिया अपेक्षाकृत व्यक्तिगत और अद्‌वितीय बन जाती है, क्योंकि शिक्षार्थी की सहभागिता और चिन्तन निर्णायक हो जाते हैं। इसके अलावा, शिक्षा में उपयोग की जाने वाली अवधारणाएँ सम्बन्धित विषयों से तैयार की जाती हैं; ये अवधारणाएँ एक-दूसरे से स्पष्ट रूप से अलग होती हैं। उदाहरण के लिए, मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ अपनी संकल्पना और अभिव्यक्ति में बहुत अलग होती हैं। इन अवधारणाओं और दार्शनिक और अन्य मूल्यात्मक और व्यावहारिक आयामों से सम्बन्धित कई अन्य अवधारणाओं को जब शिक्षा में अवधारणाओं को समझने के उद्‌देश्य से इस्तेमाल किया जाता है (जैसे सीखना, सीखने की कुशलता, अध्यापन, अध्यापन की प्रभावशीलता, पाठ्‌यचर्या, पाठ्‌यपुस्तक, शिक्षण की विधि, परीक्षा, आदि), तब ये उतनी एकीकृत नहीं रह जाती हैं जितनी कि वे उस समय प्रतीत होती हैं जब एक मनोवैज्ञानिक या समाजशास्त्रीय या दार्शनिक दृष्टिकोण जैसे एकल विषय सन्दर्भ में उन्हें समझने और अवधारणाबद्‌ध करने की कोशिश की जाती है। शिक्षा में अवधारणाएँ अभ्यास आधारित होती हैं; वे सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्तरों पर प्रकट होती हैं; वे बहुआयामी होती हैं। शिक्षा में अवधारणाओं और प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश शैक्षिक दृष्टिकोण से करनी होगी। शिक्षा व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों दृष्टियों से सोद्‌देश्य और कार्योन्मुखी होती हैं, जो सहभागी अधिगम को प्रोत्साहित करती है, और जो सामाजिक रूप से संगठित होने वाले सभी मानवीय प्रयासों के गठन के लिए प्रबन्धन की जगहों को सम्भव बनाती है। यही कारण है कि यह किसी भी एकल अनुशासनिक दृष्टिकोण की अपेक्षा अधिक व्यापक और अधिक विस्तृत होती है। फिर भी, शिक्षा के इस व्यापक और विस्तृत क्षेत्र को विभिन्न घटकों के बीच उचित वैचारिक सम्पर्कों के साथ किसी एकल समग्र के रूप में देखा जाना चाहिए। बाद की यह विशेषता सभी घटकों से अलग शिक्षा के परिप्रेक्ष्य के बारे में बताती है, और इसलिए उनके संचालन को इस तरह देखा जाना चाहिए कि वे एक साझा लक्ष्य की दिशा में योगदान करें।

पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के बारे में हमारी समझ को गहराई प्रदान करने के लिए शैक्षिक परिप्रेक्ष्य को अहम स्थान देने की आवश्यकता है। यही शैक्षिक परिप्रेक्ष्य शिक्षकों को तैयार करने के लिए कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने और उनके कार्यान्वयन के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से, शिक्षा एवं उसकी प्रक्रियाओं को समझने के लिए शिक्षा से सम्बन्धित विषयों से प्राप्त की गई अवधारणाओं और सिद्धान्तों, और उनके निहितार्थों को अपने आप में बौद्धिक उपकरण माना जाना चाहिए। इसके अलावा, यह माना जाना चाहिए कि भले ही केवल आंशिक रूप से लेकिन यह शिक्षा और पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं को समझने के लिए उपयोगी इनपुट्स हैं। हालाँकि, इस समझ को शिक्षा के समग्र दृष्टिकोण में सुविचारित रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जो एक उद्देश्यपूर्ण, कार्रवाई-उन्मुखी और गतिविधि-आधारित कार्यक्रम है। शिक्षा अपनी संस्थापना के भीतर एक संगठित तरीके से संचालित होती है; इसे अपने कामकाज और निर्वाह के लिए विकास के अन्य क्षेत्रों और समुदाय से भी व्यापक सहयोग प्राप्त होता है। इस अर्थ में शिक्षा एक मानवीय उद्यम है। पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं को इस तरीके से देखने से पता चलता है कि सम्बन्धित अनुशासनों से प्राप्त अवधारणात्मक इनपुट्स शिक्षा की विभिन्न प्रक्रियाओं की अवधारणाएँ निर्मित करने में इसके अपने परिप्रेक्ष्य के भीतर ही अकादमिक सहायता प्रदान करते हैं। पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में, यह मुख्य रूप से एक पेशेवर कार्य है, जिसे एक शिक्षक शैक्षिक कार्रवाइयाँ निर्मित करने के लिए एक संश्लेषित ढंग से प्रासंगिक अवधारणात्मक इनपुट्स का प्रयोग करते हुए करता है; यह क्रिया छात्रों को सक्रिय सहभागी और अर्थों एवं समझ के खोजकर्ता बनने के लिए उचित स्थान प्रदान करके शिक्षण-अधिगम वातावरण को आकार देती है। सम्पूर्ण शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा इस तरह बनाई और कार्यान्वित की जानी चाहिए कि एक छात्र-शिक्षक को एक पेशेवर के रूप में तैयार करने के इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। जब इस तरह के दृष्टिकोण से देखा जाता है, तो शिक्षा उससे बहुत अलग दिखाई देती जो वह 'प्रौद्योगिकीय' दृष्टिकोण से देखने पर मालूम पड़ती है। यह मुख्य रूप से व्यक्तिगत शिक्षार्थी पर और 'शैक्षिक ज्ञान' के अधिगम के लिए सृजनात्मक और निर्माणात्मक प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करती है। इसलिए शिक्षा की अवधारणाओं और प्रक्रियाओं को ठीक से समझना आवश्यक है, कार्रवाई के सृजन के लिए उनका अध्ययन आवश्यक है और सहयोगात्मक तरीके से उनका प्रबन्धन करना आवश्यक है, ताकि सीखने (शिक्षात्मक) का

एक संस्थागत वातावरण मुहैया कराया जा सके। इन सभी कदमों का संचालन 'शिक्षा के सिद्धान्त' के माध्यम से किया जाना चाहिए, जो शैक्षिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करने के उद्देश्य से अवधारणात्मक रूप से समर्थ और पर्याप्त होना चाहिए।

मानव अधिगम या शिक्षा की प्रक्रिया की ऐसी विशेषताओं को सभी पाठ्यचर्या रूपरेखाओं द्वारा महत्त्व दिया गया है, लेकिन वास्तविक पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं में इन अन्तर्दृष्टियों का समावेश मुख्यतः एक दृष्टिकोण को अपनाने के जरिए किया गया है, जो हाल ही तक व्यवहारवादी और प्रौद्योगिकीय रहा है। यह एनसीएफ-2005 ही है, जिसने निर्भीकता दर्शाई और पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रिया की धड़कन को महसूस किया ताकि उस बीमारी को सफलतापूर्वक पहचाना जा सके जिससे यह प्रभावित होती है। इसलिए एनसीएफ-2005 ने मानव अधिगम और पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए निर्माणवाद के सिद्धान्त की सिफारिश की।

इस सिद्धान्त की मान्यता है कि बच्चे में सीखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उसमें ज्ञान के निर्माण की सम्भावित क्षमता होती है, जो उसे वह आधार प्रदान करती है कि वह अपने आस-पास के वातावरण में जो कुछ भी देखता है, उसमें अर्थ खोजे। इस सिद्धान्त के प्रासंगिक विवरणों पर इस दस्तावेज में पहले चर्चा की गई है।

विद्यालयीन शिक्षा के लिए एनसीएफ-2005 निर्माणवाद के सिद्धान्त को मूलभूत आदर्श के रूप में लेकर तैयार की गई है। सम्पूर्ण पाठ्यचर्या को उसी के अनुसार तैयार किया गया है। पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं की प्रकृति को अभिव्यक्त किया गया है; छात्र की संज्ञानात्मक भूमिका को केन्द्रीय स्थान दिया गया है; शिक्षक के समर्थन - एक पेशेवर के रूप में शिक्षक के प्रशिक्षण के साथ - जिसका उद्देश्य छात्र को स्वायत्त शिक्षार्थी बनाना है, की व्याख्या की गई है; और शिक्षक-प्रशिक्षण, परीक्षा और विद्यालय प्रबन्धन के लिए प्रणालीगत सुधारों का सुझाव दिया गया है।

10. एनसीएफ-2005 सैद्धान्तिक दृष्टि से दो बिन्दुओं के आधार पर समर्थनीय है :

पहला, यह एनसीएफ-2005 में व्याप्त 'शैक्षिक परिप्रेक्ष्य' पर प्रकाश डालती है। यह एक मिश्रित और समग्र चित्र प्रदान करती है, जिसमें शैक्षिक सन्दर्भ का स्पष्ट रूप से विवरण दिया गया है।

दूसरा, मानव अधिगम का सिद्धान्त - निर्माणवाद - शैक्षिक रूप से उपयोगी है, क्योंकि यह अधिगम को एक प्रक्रिया के रूप में मानता है, जिसे अधिक लचीलेपन के साथ सृजित

किया और समझा जा सकता है। शिक्षार्थी की सहभागिता, शिक्षक की भूमिका, परीक्षा, शैक्षिक प्रशासन और व्यापक समुदाय सहित विद्यालय के बाहर के अन्य सहयोगी संस्थानों के सन्दर्भ में निर्माणवाद के दूरगामी परिणामों की संकल्पना की गई है, उसे स्पष्ट रूप से निरूपित किया गया है और कुछ जगह उदाहरण सहित समझाया गया है।

हालाँकि, एनसीएफ-2005 शिक्षा की मौजूदा परिस्थितियों में निर्माणवाद को अपनाने की 'व्यवहार्यता' की वकालत नहीं करती है। इसके विपरीत, यह पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रक्रियाओं की अवधारणा बनाने और उनके कार्यान्वयन, दोनों में आधारभूत परिवर्तन लाने की वकालत करती है। इसके लिए प्रणालीगत सुधारों की आवश्यकता है। वास्तव में, शिक्षा, विशेष रूप से पेडॅगोजि के पूरे विमर्श के लिए यह जरूरी है कि वह 'शिक्षा का सिद्धान्त' विकसित करने के लिए परिवर्तन की प्रक्रिया से होकर गुजरे। मजबूत और पर्याप्त सैद्धान्तिक आधारों की मौजूदगी को देखते हुए, प्रणालीगत सुधारों के माध्यम से शिक्षा की प्रक्रियाएँ शुरू करने की आवश्यकता है। इस दिशा में, शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण साहित्य तैयार करने और शिक्षा पर विमर्श को समृद्ध करने के लिए अन्य उपायों की शुरुआत करने के लिए एनसीईआरटी जैसे राष्ट्रीय संस्थानों और विश्वविद्यालयों द्वारा सुविचारित प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

कुल मिलाकर एनसीएफ-2005 इसमें व्यक्त किए गए सभी पहलुओं के काफी आसान कार्यान्वयन की आशा नहीं करती है। वास्तव में, ये पहलू बहुत से हैं, जिनमें एक प्रभावी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया निर्मित करने में निर्माणवाद जैसे सैद्धान्तिक आधारों से लेकर अध्यापक शिक्षा में आवश्यक प्रणालीगत सुधार, मूल्यांकन सम्बन्धी कार्यवाहियाँ और पेडॅगोजि सम्बन्धी प्रयासों के समर्थन के लिए जरूरी संगठनात्मक कार्यवाहियाँ, तक शामिल हैं। यह रूपरेखा दर्शाती है कि मौजूदा रूप में शिक्षा प्रक्रियाएँ पर्याप्त रूप से ठीक नहीं हैं और इस बात पर जोर देती हैं कि उन्हें सुधारने की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, एक सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया गया है और ठोस शब्दों में सुधार सुझाए गए हैं, जैसा कि एनसीएफ-2005 और फोकस ग्रुप रिपोर्टों, दोनों में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। एनसीएफ-2005 में अवधारणात्मक रूप से और ठोस तरीके से, दोनों रूपों में जिस बात की परिकल्पना की गई है और वकालत की गई है, वह है राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में प्रतिपादित 'आधुनिक शिक्षा प्रणाली' का निर्माण। इस अर्थ में, एनसीएफ-2005 ने शिक्षा में परिवर्तन की गति को अभिव्यक्त किया है। यह राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली

के माध्यम से आने वाले कल की जरूरतों को पूरा करने के लिए परिवर्तन को लागू करने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ

1. Indian Institute of Applied Political Research. 1978. The Encyclopaedia of the Indian National Congress, Vol. Five: 1906-1910- The Swat Imbroglio, (ed. A.M. Zaidi). S. Chand & Co. Ltd.. New Delhi. P. 15.
2. Indian Institute of Applied Political Research. 1980. The Encyclopaedia of the Indian National Congress, Vol. Eleven: 1936-1938 - Combating an Unwanted Constitution. (eds. AM. Zaldi and Dr S.G. Zaidi). S. Chand & Co. Ltd., New Delhi. Pp. 431-32.
3. Ram Gopal. 1956. Lokmanya Tilak - a Biography. Asia Publishing House, Mumbai. Pp. 103-104.
4. Ibid. P. 86.
5. Government of India. Resolution No. F.413 (3) 64-E.1. Ministry of Education dated 14 July 1964.
6. Government of India. Report of the Education Commission, 1964-66. Para 18.58.
7. J.P. Naik. 1982. Programmes for Immediate Action Identified by the Education Commission. 1964-66. quoted in The Education Commission and after. Allied Publishers Pvt. Ltd., New Delhi. pp. 36-38.
8. Government of India. National Policy on Education, 1968, Pt 4(17).
9. NCERT. 1976. Higher Secondary Education and Its Vocationalisation. New Delhi. Para 5.2, p. 9.
10. Ibid. Pp. 12-19.
11. Ibid. Appendix I and Appendix II. Pp. 17-24.
12. NCERT. 1988. National Curriculum for Elementary and Secondary Education. P. 3.
13. 42nd Amendment: The words 'socialist, secular' were added to the Preamble to the Constitution of India, 1976, w.e.f. 31 November 1977.
14. Government of India. 1993. Leaming without Burden. Report of the National Advisory Committee. P.1.

15. Government of India. 1993. Report of the Group to Examine the Feasibility of Implementing the Recommendations of the National Advisory Committee. P. 3.
16. Ibid. P. 15.
17. Ibid. P. 15.
18. NCERT. 2000. National Curriculum Framework for School Education. Preface, Pp. vi and viii.
19. Ibid. Pp. 45-49.
20. Ibid, para 1.4.3, p. 13.
21. Ibid, para 1.4.3, p. 14.
22. Ibid, para 1.4.4. p. 14.
23. Ibid, para 1.4.7. p. 19.
24. NCERT. Supreme Court of India Judgement. 12 September 2002, Reportable No. 375/2002, Writ Petition (civil) No. 98 of-2002. P.8.
25. Ibid. P. 78.
26. Ibid. P. 82.
27. Ibid. P. 83.
28. Ibid. P. 84.
29. Ibid. P. 47.
30. Ibid. Pp. 72-73.
31. NCERT. 2005. National Curriculum Framework. P. 14.
32. Ibid. P. 22.
33. Ibid. P. 24.
34. Government of India. National Policy on Education, 1986. Para 3.13.
35. Ibid. Para 3.4.
36. NCERT. 1975. The Curriculum for the Ten-year School: a Framework. Para 2.2, p. 4.
37. The Ishwarbhai Patel Committee 1977 and the Adiseshiah Committee 1978.
38. Government of India. 1977. Report of the Review Committee on the Curriculum for the Ten- year School. New Delhi.

39. NCERT. 2000. National Curriculum Framework for School Education. Para 1.4.3, p. 14.
40. Ibid. Para 1.4.4. p. 14.
41. Ibid. Para 1.4.7, p. 19.